UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182305
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—391 29-4-72—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 Accession No. H 1543

Autho. C54M

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

मृगनयनी-समीक्षा

(श्री वृन्दावनलालवर्मा के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास
मृगनयनी का सरल-सुबोध अध्ययन)

लेखक

रामखेलावन चौधरी, एम० ए० एम० एड्०
लक्ष्मीनारायण टण्डन एम० ए० साहित्यरत्न

प्रकाशक

हिंदी-साहित्य-भण्डार
रानीकटरा, लखनऊ ।

दूसरी बार] १९५५ [मूल्य १॥)

प्रकाशक
हिंदी-साहित्य-भंडार
रानी कटरा, लखनऊ।

लेखकों की अन्य कृति

1969
यशोधरा—एक अध्ययन

गुप्त जी की प्रसिद्ध कृति यशोधरा का सरल सुबोध अध्ययन है। महाकवि की भाषा-शैली की आलोचना, यशोधरा में नारी-भावना, साकेत, बुद्ध चरित आदि से तुलना आदि उपयोगी लेखों के साथ-साथ कठिन शब्दार्थ, कथासार और कठिन स्थलों की विस्तार के साथ व्याख्या भी की गई है। मूल्य १॥)

पता—हिंदी-साहित्य-भण्डार, रानीकटरा, लखनऊ।

मुद्रक
नवभारत प्रेस,
नादान महल रोड,
लखनऊ।

समर्पण—

पूज्य पिताजी को

सादर • सविनय—

समर्पित

—रामखेलावन चौधरी

विषय सूची

१. लेखक परिचय ५
२. मृगनयनी की कथा ७
३. मृगनयनी की कथानक १४
[कथानक का निर्वाह—१६, कथानक की रोचकता—१८]
४. चरित्र चित्रण २१
[मृगनयनी—२८, लाखारानी—३३, राजा मानसिंह—३६
अटलसिंह—४५, बोधन—४६, विजय जङ्गम—५२, बैजू
आचार्य—५४, गयासुददीन—५७, नसीरुददीन—६०]
५. कथोपकथन ६३
६. मृगनयनी में ऐतिहासिक तत्व का समावेश ६८
७. भाषा-शैली की आलोचना ७६
८. प्रकृति वर्णन ८६
९. लेखक का व्यक्तित्व ९१
१०. मानव-स्वाभाव का ज्ञान १०४
११. देश काल की छाप ११०
११. मृगनयनी में लेखक का संदेश ११८
१३. प्रेमचंद और वर्मा जी की तुलना १२३

मृगनयनी-समीक्षा

लेखक-परिचय

हिन्दी के वर्तमान उपन्यासकारों में श्री वृन्दावनलाल वर्मा का स्थान प्रमुख है। हिंदी साहित्य में उन्हें वही स्थान प्राप्त है, जो अंग्रेजी में सर वाल्टर स्काट, गुजराती में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और बंगला में प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय को प्राप्त है। उन्होंने उपन्यास क्षेत्र में ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है और विशेष रूप से, बुन्देलखंड के इतिहास में अधिक रुचि रखने के कारण, वहाँ के प्रसिद्ध वीरों की कथाओं और किंवदंतियों को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया है। इसका खुला प्रमाण उनकी रचनायें—झाँसी की रानी, मृगनयनी और गढ़ कुंडार हैं।

जार्ज ईलियट ने उपन्यास साहित्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये लिखा है कि लेखक का स्वानुभव, उपन्यास की जान है। यही उसकी मौलिकता का मुख्य स्रोत है। वर्मा जी के उपन्यासों पर उनके व्यक्तिगत अनुभवों की गहरी छाप है। उन्होंने स्वयं ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा की है, उन्हें पुरातत्व, मनोविज्ञान, साहित्य, मूर्तिकला, संगीतकला और चिंतन में विशेष रुचि है। वे शिकार खेलने के शौकीन हैं। इस लिये इन सब विषयों का समावेश उनके साहित्य में हुआ है। यही वर्मा जी के साहित्य की मुख्य विशेषता है।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म सन् १८९० ई० में झाँसी जिले के मऊ रानीपुर ग्राम में हुआ। उनके प्रपितामह श्री आनन्दी

राव झाँसी राज्य के दीवान थे। सन् १८५७ के स्वतंत्रता आंदोलन में उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई के साथ सक्रिय भाग लिया और स्वयं युद्ध में लड़ते हुये मारे गये। वर्मा जी के परिवार में स्वाभावतः राष्ट्रप्रेम की भावना का घर करना उचित था। इस परिवार के प्रति वहाँ के लोगों में काफ़ी सम्मान और आदर है। वर्मा जी ने बचपन में ही अपने भावी उपन्यासकार का परिचय दे दिया था। वे अपनी दादी से बुंदेलखंड की कहानियाँ बड़ी रुचि से सुना करते थे। लक्ष्मीबाई की कहानी ने उन पर अमिट प्रभाव डाला।

आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके एल-एल० बी० की परीक्षा पास कर ली और वकालत करने लगे। वे स्वभाव से ही भावुक और सहृदय थे, इस लिये कानूनी पेशे में उन का मन न लगा। वे एकान्त और निस्पृह जीवन पसंद करते हैं, तो फिर इस प्रकार के छल-फरेब वाले व्यवसाय में वे कैसे टिकते। वे साहित्य सेवा की ओर प्रेरित हुये। उन्होंने १६०५ में एक उपन्यास और दो नाटक लिखे, १६०६ में फिर तीन नाटक लिखे। १६०८ में उन्होंने बुद्ध जी का जीवन चरित्र लिखा उसके बाद से उनकी साहित्य साधना का चक्र चलता ही रहा। उनकी स्फुट रचनायें 'सरस्वती' और 'सुधा' में प्रकाशित होती रहती हैं। पहले उनके साहित्य का प्रकाशन, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ से होता था। अब वे स्वयं 'मयूर प्रकाशन' संस्था खोल कर प्रकाशक बन गये हैं। १६४२ से उन्होंने वकालत छोड़ दी है और तभी से हिन्दी साहित्य के उपन्यास अंग को अपनी प्रतिभा के जल से सींच कर पल्लवित कर रहे हैं। उनकी रचनायें निम्नलिखित हैं:—

उपन्यास—ऐतिहासिक—गढ़ कुन्डार, विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, मुसाहिबजू, छत्रसाल, सत्तर सौ बत्तीस, शाह गफूर, आनंदघन, ललितादित्य, राणा सांगा, माधव जी सिंधिया, और टूटे काँटे।

सामाजिक—कुंडलीचक्र, प्रत्यागत, हृदय की हिलोर, प्रेम की भेंट, कभी न कभी, लगन, अंचल मेरा कोई, और शबनम

नाटक—ऐतिहासिक—फूलों की बोली, हंस मयूर, झाँसी की रानी, और जहाँदार शाह ।

सामाजिक—धीरे-धीरे, राखी की लाज, बाँस की फाँस, पायल, मगलसखा, कब तक, पीले हाथ, सगुन, काश्मीर का काँटा, और टंटागुरु ।

एकांकी—नीलकंठ, लो भाई पंचों लो ।

काहानियाँ—(संग्रह)—हरसिंगार, कलाकार का दंड, दबे पाँव ।

मृगनयनी की कथा

१५वीं शताब्दी के अंत में भारत का संगठित साम्राज्य बिल्कुल नष्ट हो गया । पंजाब और दिल्ली में लोदी वंश के सुल्तानों का प्रभुत्व था युक्तप्रांत में शर्कीवंश के सुल्तान प्रबल हो चुके थे । बिहार में पठान सर उठा रहे थे राजपूताने में राणा कुम्भा और संग्रामसिंह अपनी शक्ति संगठित करने में लगे थे । ग्वालियर में राजा मानसिंह की प्रभुता स्थापित थी । मालवा में खिलजी वंश के गयासुद्दीन का राज्य था । गुजरात में महमूद बघर्रा जो अपनी राक्षसी भूख के लिये इतिहास प्रसिद्ध है, अपना साम्राज्य बढ़ाने की सोच रहा था । दक्षिण भारत में बहमनी सल्तनत और विजयनगर साम्राज्य सत्ता-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील थे । राजनैतिक संधियों का उन दिनों कोई मूल्य न था । शक्ति संतुलन के लिये एक राज्य दूसरे राज्य से मैत्री करता था, परन्तु काम निकल जाने पर वह मैत्री भंग हो जाती थी ।

राजा मानसिंह तोमर चतुर शासक, योद्धा, वीर, कलाकार और निर्माणकर्त्ता था । दिल्ली के लोदियों और मालवा के खिलजी सुल्तान से अनवरत युद्ध करते हुये भी वह कला की

उपासना में रत था। उसके शासनकाल में प्रजा की सर्वांगीण उन्नति हो रही थी।

मानसिंह को पहला सामना सिकन्दर लोदी से करना पड़ा। उसकी विशाल सेना ने समुद्र की तरह ग्वालियर के किले को आत्मसात कर लेना चाहा पन्तु उस पत्थर के दुर्ग के टकराकर समुद्र की शक्ति क्षीण हो गई। किला बच गया परन्तु नगर लुट गया। गाँवों की खेती-बारी सेना ने उजाड़ दी। हमले के बाद फिर गाँवों में लोग वापस आकर बसने लगे। ग्वालियर से ६ मील दूर साँक नदी के किनारे राई नाम का गाँव था। यहाँ की ग्रामीण जनता को भी अपार कष्ट हुआ परन्तु फिर से लोग खेती बारी में जुट गये।

राई गाँव में मृगनयनी, अपने भाई अटल के साथ रहती थी। माता पिता मर चुके थे, अब भाई बहिन थोड़ी बहुत खेती करके और शिकार खेलकर जीवन निर्वाह करते थे। एक दूसरे गाँव से आकर एक अहीर युवती कन्या अपनी माता के साथ आकर राई गाँव में बस गई। इसका नाम लाखा रानी था। मृगनयनी को निन्नी और लाखारानी को लाखी कहकर लोग पुकारते थे। यह दोनों नवबालायें बड़े स्नेह से मिलतीं और रहती थीं। निन्नी और उसका भाई लक्ष्यभेद के लिये प्रसिद्ध थे लाखी ने उनसे तीर चलाना सीखा और वह भी इस कला में निपुण बन बैठी। तीनों का नाम लक्ष्यभेद कला के क्षेत्र में चमक उठा और उनके यश का सौरभ गाँव की समीर से मिलकर मालवा, गुजरात और ग्वालियर के राजमहलों तक जा पहुँचा। मालवा के सुल्तान के गयासुद्दीन और गुजरात के महमूद बघर्रा उन दोनों नारी रत्नों को पाने के लिये पागल हो उठे। राई गाँव में एक टूटा फूटा मंदिर था। इसका पुजारी बोधन, ग्वालियर के राजा मानसिंह का परिचित था। उसने निन्नी और लाखी के

कौशल का समाचार राजा को दिया। राजा भी उनको देखने के किये लालायित हो उठा।

राई गाँव में होली आई। रंग, अबीर, और गुलाल बह चला। निन्नी और लाखी ने जी भर कर होली खेली। शाम को सब मंदिर में इकट्ठा हुये। लाखी ने अटल को देखा और अटल ने लाखी को। दोनों प्रेम के पाश में बँध गये। निन्नी ने समझा, वह इस बात को लेकर लाखी से परिहास करती थी। एक दिन अटल ने मन की बात जुबान पर लाकर लाखी पर प्रेम प्रकट किया। लाखी ने आत्मसमर्पण कर दिया पर एक समस्या थी जाति बंधन उनके बीच दीवार बनकर आ गयी। अटल था गूजर और लाखी थी अहीर परन्तु उन दोनों ने विवाह-बंधन में बँधने का निश्चय कर लिया, निन्नी का अनुमोदन प्राप्त हो गया। इसी बीच लाखी की माँ की मृत्यु हो गई। निन्नी ने लाखी को अपने घर रख लिया। गाँववालों को बुरा लगा। उन्हें लाखी और अटल के प्रेम का पता भी चलने लगा था। उन्होंने कोई उपद्रव नहीं किया। किसी प्रकार उन तीनों के दिन कट रहे थे।

उधर मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन ने निन्नी और लाखी को अपने हरम में रखने के लिए जाल फैलाना शुरू किया। इसके लिए उसने नटों की एक टुकड़ी भेजी। पोटा और पिल्ली उनके नेता थे। उन्होंने राई गाँव के पास डेरा डाला। शिकार खेलने के लिए आते समय लाखी और मृगनयनी ने इन नटों से परिचय प्राप्त किया। उन्होंने दोनों को अपना खेल दिखा कर मुग्ध कर लिया। एक ओर वे लोग गहनों, फलों और चावलों के लोभ में लाखी और निन्नी को फँसाना चाहते थे और दूसरी ओर वे अटल को पिल्ली के नवयौवन का शिकार बनाकर अलग करना चाहते थे। साथ ही वे इन लोगों की खबरें मालवा भेजते थे और सहायता प्राप्त करते थे। एक दिन चार तुर्क घुड़ सवारों ने नटों

की सहायता से निन्नी और लाखी को जंगल में शिकार खेलते समय पकड़ना चाहा उन दोनों ने बड़ी वीरता से दो को मार भगाया। और दो स्वयं भाग गये।

तुर्कों के ग्वालियर राज्य में आने से आंतक फैला। राई गाँव से यह समाचार लेकर बोधन राजा मानसिंह के पास गया। राजा ने शिकार खेलने और स्वतन्त्र प्रजा का ढाढ़स बँधाने के लिये राई में डेरा डाला। उसने निन्नी और लाखा रानी को भी देखा। एक शिकार के अवसर पर निन्नी और लाखी ने अद्भुत वीरता दिखाई—उन्होंने एक नाहर और अरने को मारा। राजा ने मुग्ध होकर निन्नी से विवाह कर लिया। अब वह मृगनयनी रानी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस विवाह की स्मृति में राजा ने साँक से एक नहर निकाल कर ग्वालियर तक उसे पहुँचाया। राजा मानसिंह के आठ रानियाँ थीं। मृगनयनी को पहले दुख हुआ पर उसने संदेह को दूर करके राजा से प्रेम किया। उसने राजा मानसिंह को प्रेरणा दी, स्वयं संयमपूर्वक रह कर, विजय लिक्षायत, बैजू नायक और कला से नृत्य और संगीत सिखना प्रारम्भ किया। अन्य रानियाँ उससे जलती थीं परन्तु उसे परवाह न थी। उसका जीवन सुखी था—हाँ केवल चिन्ता थी तो अपनी सखी लाखी और भाई अटल की, जो राई में रह गए थे।

मानसिंह तोमर था और मृगनयनी गूजर। दोनों का विवाह हो गया था, इससे अटल का साहस बढ़ा। उसने मृगनयनी के बिदा हो जाने के बाद लाखी से विवाह करना चाहा। इस कार्य में यह बोधन पुजारी की सहमति चाहता था। उसने बोधन को सदा सहायता दी थी पर उस कट्टर ब्राह्मण ने विवह कराने से साफ इनकार कर दिया। गाँव वालों ने हँसी उड़ाई। अटल ने दुखी होकर स्वयं भगवान के सामने लाखी का पाणिग्रहण किया और राई से चले जाने का निश्चय किया। वे दोनों ग्वालियर जा सकते थे परन्तु लाखी के आत्मसम्मान ने रोका। नट अभी

वहीं डेरा डाले थे। उनके हाथ से मृगनयनी निकल चुकी थी। उन्होंने लाखी को ही हथियाना चाहा। इसलिये उन्होंने लाखी और अटल को फुसला कर साथ ले लिया और नरवरगढ़ की ओर चल पड़े।

नरवरगढ़ ग्वालियर की उस सीमा पर है जहाँ मालवा शुरू होता है। नरवरगढ़ पर मानसिंह का अधिकार था। यहाँ से कुछ दूर मालवा का एक किला था जो चंदेरी कहलाता था। महमूद बघर्रा इस ओर आ रहा था परन्तु कुछ राजनैतिक कारणों से लौट गया। यह देखकर मालवा के सुल्तान गयास ने कालपी विजय के लिये प्रस्थान किया और मार्ग में नरवरगढ़ को घेर लिया। नट और लाखी अटल किले के भीतर थे। नट लाखी का समाचार सुल्तान को भेजते थे। पिल्ली ने एक दिन स्पष्ट रूप से लाखी को बताया कि सुल्तान गयास उसे प्राप्त करना चाहता है। यदि वह अटल को छोड़ दे तो उसका जीवन स्वर्ग बन जाय। लाखी को यह भी पता चल गया कि पिल्ली अटल पर आसक्त है। लाखी का दिल भर आया पर उसने बुद्धिमानी से काम लिया। पिल्ली को उसने आधा राज देने का वचन दिया और कहा कि यहाँ से निकल चलो। रात में प्राचीर से और किले के बाहर एक पेड़ से रस्सा बाँध कर सबने निकल भागने की योजना बनाई। भागते समय लाखी ने जिद की कि पहले सारे नट और पिल्ली उतर जायँ फिर अटल और बाद में लाखी। पिल्ली चाल में आ गई। जब पिल्ली उतरने लगी तो लाखी कटार से रस्सा काट दिया। सारे नट और पिल्ली नष्ट हो गये। तब लाखी और अटल निश्चिंत हुए। किलेदार को खबर दी, सारा दुर्ग तैयार हो गया। सुल्तान गयास ने पूरे जोर से आक्रमण किया पर वह विफल रहा। उधर राजा मानसिंह को खबर मिली, वह भी आ धमका। नरवरगढ़ आकर लाखी की वीरता का हाल मालूम हुआ। वह अटल और लाखी

को सम्मान पूर्वक ग्वालियर ले आया। यहाँ लाखी और मृगनयनी बड़े स्नेह से रहने लगीं।

यद्यपि लाखी और अटल को आश्रय मिल गया परन्तु समाज उनका तिरस्कार करता रहा। यह काफी बड़ा दुख था। राजा ने बोधन पुजारी को बुलाकर उनका विवाह कराने की आज्ञा दी परन्तु बोधन ने अस्वीकार कर दिया। फिर लिङ्गालत सम्प्रदाय के विजय ने विवाह सम्पन्न कराया। इस समस्या का अन्त होने पर राजा ने कला की ओर विशेष ध्यान दिया। मृगनयनी और राजा दोनों ने संगीतज्ञों को आश्रय दिया। बैजू बावरा ने शास्त्र सम्मत गीत प्रणालियों में परिमार्जन और संशोधन किये। उसने कुछ नये रोगों और मौलिक ध्वनियों की रचना की। राजा ने ग्वालियर में एक संगीत विद्यापीठ की स्थापना की जो अब भी उस परम्परा को बनाए हुए है। मान मंदिर और गूजरी महल का निर्माण राजा ने करवाया। आए दिन गोष्ठियाँ होतीं और राजा स्वयं भाग लेता था।

राजा मानसिंह प्रजापालन और शासन में व्यस्त था परन्तु दिल्ली का सिकंदर लोदी चुप न था। वह ग्वालियर को हड़पने की ताक में था। मानसिंह ने युद्ध और सैन्य संचालन की दृष्टि से राई गाँव में एक गढ़ी बनवाई और उसका शासन अटल को सौंप दिया। अब लाखी और अटल दोनों वहीं रहने लगे। सिकंदर थोड़े दिन बाद ही एक विशाल सेना के साथ ग्वालियर पर आ धमका। राजा मानसिंह तैय्यार था। उसने दुर्ग से बाहर निकलकर उसका सामना किया। सिकंदर कई जगह पराजित हुआ पर डटा रहा। सुरक्षा के विचार से मानसिंह किले में वापस आ गया। अब घेरा पड़ चुका था। उधर सिकंदर ने राई गढ़ी को भी घेर लिया। चलते समय लाखी ने मृगनयनी से कहा था कि जब कोई बड़ी विपत्ति आवेगी, तो मैं एक बड़ी अग्निशिखा प्रज्वलित करके तुम्हें सूचना दूँगी। राईगढ़ी

घिर चुकी थी। रसद बंद थी। लाखी ने मानसिंह की सहायता प्राप्त करने के लिए, आग लगवा दी। मृगनयनी को विपत्ति का पता चला। उसने राजा से तुरंत सहायता देने के लिए कहा। राजा ने तीसरे दिन जाने का निश्चय किया।

उधर अटल और लाखी ने वीरतापूर्वक गढ़ी की रक्षा की। तुर्कों के आक्रमण बराबर हो रहे थे। सब लोग थके थे। रात में लाखी ने स्वयं कवच पहनकर गश्त लगाना आरम्भ किया। अटल सो गया था। एक स्थान पर लाखी बैठकर हालचाल लेने लगी। पास किले की दीवार पर कुछ शत्रु सैनिक चढ़ आए। लाखी ने देखा। उसने बाणों से कई को घायल किया। साथ ही शत्रु का एक तीर उसके हृदय को विदीर्ण कर गया। तब तक गढ़ी की सेना सचेत हो गयी। अटल भी आ गया परन्तु लाखी गिर चुकी थी। उसने अपने प्रियतम की गोद में लेटकर अंतिम साँस ली। अटल के मुख का दीप बुझ चुका था। निराश-हृदय अटल ने केसरिया बाना पहना और वीर सैनिकों के साथ गढ़ी से बाहर निकाल कर शत्रु पर आक्रमण किया। वह भी मारा गया परन्तु सिकंदर के छक्के छूट चुके थे। उसने घेरा उठाकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। बीच में सिकंदर ने नरवरगढ़ को वीरान कर दिया। जब मानसिंह राई पहुँचा तो सब कुछ समाप्त हो चुका था।

मृगनयनी ने लाखी और अटल की कथा दुख और धैर्य के साथ सुनी। जीवन-क्रम चल रहा था। मानसिंह की बड़ी रानी सुमन मोहिनी मृगनयनी से जलती थी। मृगनयनी के दो पुत्र थे। सुमन मोहिनी को भय था कि उसका पुत्र राज्य से वंचित होगा। यह कलह का विषय बन गया। मृगनयनी का हृदय उदार था। उसने एक पत्र लिखकर स्पष्ट कर दिया कि उससे पुत्र सुमन मोहिनी के पुत्र के सेवक बनकर रहेंगे। सुमन का पुत्र ही मानसिंह के बाद राजा होगा। मृगनयनी के इस त्याग ने

राजा मानसिंह को बहुत प्रभावित किया। उसका प्रेम और भी बढ़ गया। राजा और रानी दोनों ने अपना जीवन बड़ी शांति, संतोष और संयम से बिताया। मानसिंह जब तक जीवित रहा; शत्रुओं ने ग्वालियर की ओर ताकने की हिम्मत न की।

मृगनयनी का कथानक

उपन्यास कई दृष्टिकोणों से मौलिक कहा जा सकता है—कथानक, चरित्र-चित्रण, उद्देश्य और विचारधारा आदि के दृष्टिकोण से। इनमें से कथानक की मौलिकता प्रधान है, क्योंकि घटनायें ही उपन्यास का ढाँचा खड़ा करती हैं। यदि घटनायें ऐसी स्थितियों से चुनी गई हैं, जो पाठक के लिए बिल्कुल नई हैं, तो उसका कौतूहल बढ़ जाता है और यदि उसमें चरित्र-चित्रण, और विचारों का परिपाक कलात्मक ढंग से नहीं हो पाया है, तब भी उपन्यास पाठक का मन आकर्षित करने में सफल होता है। इसीलिये जासूसी और ऐयारी के उपन्यास हजारों लोग पढ़ते हैं। कथानक उपन्यास के लिये बड़े महत्व की चीज है। कथानक का चुनना आसान काम नहीं है। वर्मा जी अपने सारे कथानक इतिहास सामग्री से चुने हैं। इसलिये काल्पनिक कथानक में घटनाओं के मोड़ने और मरोड़ने में जो स्वतंत्रता एक उपन्याकार को मिलती है, ऐतिहासिक कथानक में वर्मा जी को नहीं मिली है।

इतिहास की सामग्री से कथानक के चुनने में उपन्यासकार को कुछ और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह ठीक है कि उपन्यास और इतिहास में अन्तर है। उपन्यास लेखक ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं ले सकता, जो एक इतिहासकार के लिये बहुत जरूरी है। घटनाओं को लेकर उनकी छान-बीन करना, उसका काम नहीं है, फिर भी इतिहासकारों ने जो तथ्य अपनी गवेषणा के बाद

संचित किये हैं, उन्हीं पर उपन्यासकार अपना महल खड़ा करता हैं, ऐतिहासिक तथ्य को विकृत करने का उसे कोई भी अधिकार नहीं है। इस दृष्टिकोण से एक ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। एक ओर उसे मानवीय भावनाओं और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुये साहित्य की परिधि के भीतर रहना पड़ता है और दूसरी ओर उसे ऐतिहासिक सत्य को रक्षा करनी पड़ती है घटनाओं के प्रवाह में, कथा में, परिवर्तन करने का उसे अधिकार नहीं होतो। वर्मा जी ने इस स्थिति को बहुत अच्छो तरह निभाया है। वे उच्चकोटि के उपन्यास लेखक और इतिहास के और पुरातत्व के अन्वेषक हैं। उपन्यास के कथानक चुनने के पहले, वे काफी छान-बीन करते हैं। 'मृगनयनी' के 'परिचय' के प्रारम्भ में उन्होंने कह दिया है:—

"१९४९ के अन्त में ग्वालियर की एक सम्मानित पत्रिका ने मुझसे नृगनयनी और मानसिह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया।..... मैंने उस कथानक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अध्ययन अवसर पाते ही आरम्भ कर दिया जिन स्थानों का सम्बन्ध उपन्यास की मुख्य कथा से है उनका भ्रमण भी किया।"

इतिहास से अपना कथानक चुनने के बाद लेखक को कितना परिश्रम और धन व्यय करना पड़ा। घर बैठे जो कथानक चुन लेते है, वे ऐतिहासिक तथ्य को सुरक्षित नहीं रख पाते। 'मृगनयनी' जैसा उपन्यास साहित्य के विद्यार्थियों के लिये ही नहीं इतिहास के विद्यार्थियों के लिये भी उपयोगी है। उन्हें इसके कथानक से तात्कालोन भारत का सच्चा चित्र दिखाई दे सकता है। इतिहास की पढ़ाई पर प्रकाश डालते हुये एक विद्वान ने लिखा है कि इतिहास और साहित्य का सुन्दर समन्वय होना चाहिए। यदि श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे उपन्यास लेखक और

द्विजेन्द्रलाल राय जैसे नाटककार यदि इतिहास के क्षेत्र में कुछ सेवा करें तो बड़ी उन्नति हो सकती है। 'सत्य' को 'सुन्दर' रूप में ऐसे लोग ही रख सकते हैं, वैज्ञानिक नहीं। इतिहास के लिये हिन्दी में गिबन (Author of Decline and Fall of Roman Empire) की आवश्यकता है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के गिबन हो सकते हैं।

'परिचय' में वर्मा जी ने मृगनयनी के कथानक को चुनने में, उसको संगठित करने में जिस ढंग को अपनाया है, उसका पूरा ब्योरा उन्होंने दे दिया है। उन्होंने ऐतिहासिक तथ्य और ग्वालियर में प्रचलित किंवदन्तियों का सामञ्जस्य किया है। किंवदन्तियाँ चलते-चलते ऐसा रूप धारण कर लेती हैं कि उन पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। चिनगारी रूपी सत्य किंवदन्तियों की राख में दब जाता है। वर्माजी ने अपने व्यवहारिक ज्ञान से उस राख को दूर करके सत्य को ढूँढ़ निकाला है। मृगनयनी का भैंसे की सींग मरोड़ना, वह भी राजा मानसिंह के महल के नीचे, और लाखी का अटल की कथा आदि को अपनी कल्पना का पुट देकर उन्होंने स्वाभाविक बना दिया है। यदि वे ऐसा न करते, तो घटनाओं की शृंखला का जुड़ना असम्भव हो जाता। इसी तरह मानसिंह की दो सौ रानियाँ थीं, इस किंवदंती में उन्होंने गाइड के मुंह से ऐट' सुनकर परिवर्तन किया है। यह स्पष्ट है और उन्होंने सच लिखा है कि मैंने घूम घूम कर, गूजरों से बातें करके, इन सब बातों की छान बीन की है।

कथानक का निर्वाह—कथानक का सौंदर्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें जितनी घटनायें रखना वाँछित हों, वे सब एक दूसरे से कार्य-कारण के सम्बन्ध से जुड़ी हों। एक घटना, दूसरी घटना को जन्म दें, इससे कथानक में प्राणयुक्त एकता आ जाती है। क्रिया और प्रतिक्रिया के बीच कथानक

का विकास स्वाभाविक ढङ्ग से होता है। 'मृगनयनी' का कथानक इस सिद्धांत की कसौटी पर नहीं चढ़ सकता। उपन्यास की घटनायें बिखरी हुई हैं। कथानक में इससे एक कमजोरी आ गई है। यह ठीक है कि कथावस्तु के लिये जो सामग्री चुनी जाती है, उसका प्रभाव कथानक की एकता पर पड़ता है और इस दृष्टिकोण से वर्मा जी का दोष कुछ नहीं है—वह युग ही ऐसा था, जब भारत में कितने ही छोटे-छोटे राज्य थे और सब लड़ते भिड़ते रहते थे। इस कारण अकेले मानसिंह और मृगनयनी की कथा को लेकर चलना असम्भव था, परन्तु कुछ बातें ऐसी अवश्य है जिनका उचित संशोधन वर्मा जी कर सकते थे। हम माने लेते हैं कि सिकंदर, गयासुद्दीन और नासिरुद्दीन आदि के कारण मानसिंह के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वे लोग ग्वालियर पर आक्रमण करते थे, इससे मानसिंह के युद्धों का परिचय पाठक पा जाता है। परन्तु महमूद बघर्रा का प्रवेश क्यों कराया गया है। उपन्यास भर में केवल दो बार उसके दर्शन होते है, उसके व्यक्तित्व का चित्र हम देख लेते हैं, पर उसकी उपस्थिति से कथानक के घटनाचक्र पर क्या प्रभाव पड़ता है? यदि वे दो परिच्छेद निकाल दिये जायँ, तो कथानक के प्रवाह में जरा भी बाधा न आयेगी। इसी प्रकार परिच्छेद ६३ जिसमें एक भूकंप का वर्णन है, व्यर्थ के लिये जोड़ दिया गया, पता नहीं इसके रखने से कथा-विकास में क्या सहायता मिली है? इस प्रकार की घटनायें कथा से बिल्कुल अलग हैं।

कथानक में एकता लाने के लिये उपन्यासकार को एक बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। उपन्यास वास्तव में प्रधान पात्र के जीवन का इतिहास है। उसके चरित्र का विश्लेषण करने में, उसके व्यक्तित्व का दर्शन कराने में और उसी की कथा पर प्रकाश डालने में, घटनाओं को इस प्रकार सजाना चाहिये कि कोई असम्बद्ध फालतू घटना बीच में न आ जाय। दूसरे पात्रों से

सम्बंधित घटनायें भी इसी उद्देश्य में सहायक हों। 'मृगनयनी' में दो मुख्य कथायें है। एक तो मृगनयनी और मानसिंह की और दूसरी लाखी-अटल की। वर्मा जी ने बड़ी कुशलता से दोनों कथाओं को एक सूत्र में बाँध दिया हैं—अटल और लाखी को ग्वालियर भेजकर, नहीं तो कथानक का प्रवाह दो धाराओं में बँटकर अपनी विशेषता खो बैठता, फिर भी एक दोष यह आ गया है कि उपन्यास की प्रधान नायिका मृगनयनी और नायक मानसिंह हैं, परन्तु पाठक लाखी और अटल की ओर अधिक आकर्षित होता है।

कथानक में रोचकता—उपन्यास की कथावस्तु पाठक के लिये मनोरंजक हो, इसके लिये उपन्यासकार को कुछ विशेष तरीकों से काम लेना पड़ता है। सबसे पहले उसे घटनाओं के चयन में घात-प्रतिघात के सिद्धांत का अनुगमन करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपन्यास में संघर्ष का उचित स्थान होना चाहिये। कम से कम प्रधान नायक का जीवन संघर्ष से भरा होना चाहिये। संघर्ष के बीच पात्रों का चरित्र विकसित होता है और साथ ही संघर्ष के कारण पाठक के मन में 'परिणाम' जानने की उत्कट जिज्ञासा जागृत होती है। जिन उपन्यासों में ऐसे 'संघर्ष' चुनकर रक्खे गये है जिनमें पाठक यह नहीं समझ पाता कि इसका परिणाम क्या होगा, उसे अत्यधिक आनन्द आता है। इसलिये 'संघर्ष' का उपयोग ऐसे ढंग से होना चाहिये कि पाठक आगे आने वाली घटना का अनुमान न लगा सके। इस दृष्टिकोण से मृगनयनी का कथानक खरा नहीं उतरता। उपन्यास का प्रधान पात्र मानसिंह और प्रधानपात्री मृगनयनी है। उनके प्रेम की कथा की प्रधानता है परन्तु उन दोनों के मिलन में, कहीं भी कोई कठिनाई नहीं दिखाई गई है; दोनों के जीवन में संघर्ष का पूर्ण अभाव है। मृगनयनी एक साधारण गूजर

परिवार की लड़की थी ; मानसिंह राजा था । कम से कम मृगनयनी के लिये तो अवश्य मानसिंह को प्राप्त करने में संघर्ष करना पड़ा होगा । उन दोनों का बड़ी आसानी से प्रणय सूत्र में बँध जाना, पाठक की जिज्ञासा को मार देता है । ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुये, लेखक अपनी कल्पना से किसी प्रकार के संघर्ष की सृष्टि कर सकता था । शिकार के समय, मानसिंह का मृगनयनी के प्रेम-पाश में बँध जाना सचमुच दुष्यंत और शकुंतला की याद दिलाता है—मृगनयनी इसी ओर संकेत करके कहती भी है कि बड़े आदमी अपनी बात भूल जाते हैं । खैर यदि मिलन इतनी आसानी से हो गया था, तो आगे भी सपत्नियों के विरोध द्वारा किसी संघर्ष की सृष्टि कराई जा सकती थी । चतुर कालिदास ने बड़े कलापूर्ण ढंग से दुष्यंत और शकुंतला का मिलन कराके भी 'अँगूठी' द्वारा संघर्ष को जन्म दिया । बात यह है कि बिना किसी संघर्ष के उपन्यास का कथानक निर्जीव हो जाता है और यह बात वर्मा जी भूल गये हैं । हाँ, एक प्रकार का संघर्ष अवश्य मृगनयनी और मानसिंह के जीवन में दिखाया गया है—वह है 'युद्ध' और 'कला' के बीच और संयम और भोग के बीच संघर्ष । यह संघर्ष भावात्मक है, घटनात्मक नहीं ।

संघर्ष के अभाव में मृगनयनी का कथानक बिल्कुल निष्प्राण हो जाता; किन्तु भाग्यवश लाखी और अटल के प्रेम ने उसकी रक्षा कर ली है । इसीलिये पाठक लाखी और अटल की ओर ज्यादा आकृष्ट होता है और उपन्यास के बीच में कथा का सूत्र, मानसिंह और मृगनयनी के हाथों से निकलकर उन दोनों के हाथों में चला जाता है । पाठक बड़ी सहानुभूति और जिज्ञासा के साथ उन दोनों प्रेमियों की जीवन घटनायें पढ़ता है और उन दोनों का प्रेम, हमारी समझ में कथा का केन्द्र है—कारण वह संघर्ष को जन्म देता है । वर्मा जी ने स्वयं

सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में अपने दिये हुये परिचय में कहा है—"पंद्रहवीं, सोलहवीं शताब्दि में लाखी और अटल के सिर पर क्या क्या बीती होगी, उसकी कल्पना ही की जा सकती है।" दोनों का विभिन्न जाति का होना, समाज का विरोध, माँडू के सुल्तान की लाखी को फँसाने की चेष्टा, नटों का जाल, दुनिया भर का अपमान, इन सभी विपत्तियों के बीच उन दोनों का प्रेम परिवर्धित होता है। वे दोनों सारी कठिनाइयाँ झेलते हैं परन्तु फिर भी मिलन का सुख नहीं भोग पाते। यह सारी कथा-उपन्यास को रोचक बना देती है।

कथानक को रोचक बनाने के लिये घटनाओं के वर्णन क्रम में हेर फेर करना आवश्यक होता है। कारण और कार्य का एक क्रम है अर्थात् पहले कारण होता है, फिर कार्य परन्तु उपन्यास में रोचकता लाने के लिये पहले कार्य का वर्णन करके, फिर कार्य का विश्लेषण किया जाता है। इस शैली का प्रयोग बा० देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकांता' में किया है। वर्मा जी ने केवल एक दो स्थलों पर उसका प्रयोग किया है। जब नरवरगढ़ में पहुँचकर पिल्ली, लाखी से अपना मन्तव्य प्रकट करती है और उसे सब्ज़बाग़ दिखाकर माँडू के 'हरम' में पहुँचाने तथा अटल को स्वयं अपना लेने की बात बताती है, तो लाखी अपने मनोद्वेग को दबा लेती है—पाठक को आश्चर्य होता है कि ऐसी तेज़मिजाज लाखी चुप क्यों हो गई, उसे तो बरस पड़ना चाहिये था। फिर वह उसे नरवर का आधा राज्य देने का वायदा करती है—पाठक हतबुद्धि होकर सोचता है; क्या, लाखी लोभ में पड़ गई या पागल हो गई। उसके बाद वह नटों के साथ गढ़ के बाहर जाना चाहती है परन्तु पहले उन सबको बाहर कर देती है, पिल्ली से इस विषय पर बहस करती है—पाठक की कुछ समझ में नहीं आता। ज्योंही पिल्ली उतरने लगती है, वह कटार से रस्सा काट देती है—तभी पाठक की समझ में सब कुछ

आ जाता है। लाखी के यह कहते ही—"डायन ! चुड़ैल, सुल्तान की गोदी में बिठलाना चाहती थी !! लेकिन नरवरगढ़ का आधा राज !!!" पाठक उछल पड़ता है। इस घटना के वर्णन में वर्मा जी ने अपनी कला का पूर्ण परिचय दिया है पर ऐसा स्थल सारे उपन्यास में केवल एक है, इसलिये बेजोड़ है। घटनाचक्र का यह एक अंश ऐसा है, जो पाठक की जिज्ञासा और कौतूहल को को पूर्ण रूप से लाने में सफल होता है।

कथानक के संजोने में वर्मा जी ने कुछ स्थलों पर 'पूर्वाभास' शैली का उपयोग किया है। कुछ पात्रों के द्वारा उन्होंने आने वाली घटनाओं की ओर संकेत करा दिया है। होली के अवसर पर हमें मृगनयनी का परिचय मिलता है और हमें मालूम हो जाता है कि वह लक्ष्यभेद में निपुण है। प्रसाद वितरण के समय पुजारी संकेत करता है "निन्नी के लक्ष्यभेद का करतब ग्वालियर के राजा को दिखलाया जाय—तो राजा और उनके सामंत दाँतों तले उँगली दबायेंगे।" इसी प्रकार अटल और लाखी बार-बार बातचीत के प्रसंग में मृगनयनी से ग्वालियर के राजा मानसिंह का जिक्र करते हैं, लाखी स्पष्ट रूप से कहती है कि मानसिंह तुझे ब्याह लेगा। उन दोनों का विवाह यदि अचानक होता, जैसे दुष्यंत और शकुंतला का हुआ था, तो अच्छा होता। पाठक को पहले ही इस घटना का आभास मिल जाता है, और जब शिकार के समय मानसिंह मृगनयनी की वीरता से प्रभावित होकर प्रणय-याचना करता है, तो पाठक न तो आश्चर्य में पड़ता है और न उसे इतना आनन्द आता है।

चरित्र चित्रण कला

उपन्यास लेखन में प्रायः तीन प्रकार की वर्णन शैलियों का सहारा लेना पड़ता है। एक शैली के अन्तर्गत लेखक को पूरी स्वतन्त्रता होती है। वह घटनाओं को और पात्रों को चलाता है,

उनके सम्बन्ध में वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सभी ढंग से अपना मतामत प्रकट करता रहता है। पात्रों के व्यक्तित्व, रूप, गुण और स्वभावों का विश्लेषण वह स्वयं कर देता है और उनके कार्यों और विचारों को उस वर्णन के अनुसार तौलने का मौका वह पाठकों को देता है। उत्तम पुरुष शैली जिसमें लेखक को एक पात्र के रूप में स्वयं आना पड़ता, या पत्र-शैली जिसमें लेखक का स्थान और भी गौण हो जाता है, दोनों ही अत्यंत जटिल हैं और लेखक को बड़े बंधन में पड़ कर चलना होता है। वर्मा जी ने प्रथम प्रकार की शैली अपनायी है। वे प्रत्यक्ष रूप से पाठक के साथ रहते हैं। उनकी शैली की विशेषता यह है कि उन्हें जितनी स्वतंन्त्रता प्राप्त है, उसका वे समुचित प्रयोग नहीं करते। 'मृगनयनी' में जितने भी पात्र हैं, उनके शील, गुण और स्वभाव का विश्लेषण उन्होंने नहीं किया है। पात्रों के सम्बन्ध में यदि कभी उन्हें कुछ कहना पड़ा है, तो उन्होंने बहुत संक्षिप्त रूप से जो कुछ भी कहा है, वह पात्र के शरीर से सम्बंध रखता है। मृगनयनी उपन्यास की प्रधान नायिका है, लाखी उपन्यास की जान है परन्तु दूसरे अध्याय में होली के अवसर पर जब हमारा साक्षात्कार निन्नी और लाखी से होता है तो वर्मा जी हमारा उनसे जो परिचय कराते हैं, वह अत्यंत संक्षिप्त होता है:—

"वे दोनों समवयस्क थीं—आयु लगभग पंद्रह-सोलह वर्ष, परन्तु निन्नी वलिष्ट और पुष्टकाया की, लाखी दुबली और छरेरी।"

अटल का परिचय भी संक्षिप्त है। देखिये :—

"अटल हट्टा कट्टा युवक था। आँखें भींज चुकी थीं। सिर के बाल लम्बे थे इसलिये सारी आकृति में भीमता आ गई थी। कई साल के कठोर जंगली जीवन ने उसके लम्बे चेहरे की लम्बी नाक को कुछ और लम्बा कर दिया था।

राजा मानसिंह का परिचय भी संक्षिप्त है:—

"राजा मानसिंह युवावस्था के आगे जा चुका था। बड़ी आँखें, भरी

भौंह, सीधी-लम्बी नाक, चेहरा भरा हुआ कुछ लम्बा, ठोढ़ी दृढ़, होंठ सहज मुस्कान वाले। सारा शरीर जैसे अनवरत-व्यायाम से तपाया और कसा गया हो। कद लम्बा और छाती चौड़ी नोकदार मूछें।"

जिस प्रकार आधुनिक चित्रकला में केवल कुछ रेखाओं के सहारे एक चित्र को जन्म दिया जाता है, उसी प्रकार वर्मा जी ने केवल कुछ शब्दों के सहारे पात्रों का एक रेखाचित्र तैय्यार किया है। रंग भर कर उसे आडम्बरपूर्ण बना देना, उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं जान पड़ता। पुराने शैली के अनुसार पात्रों के शील-स्वभाव के विश्लेषण में पन्ने के पन्ने भर दिये जाते थे, वह पद्धति अब अधिक मान्य नहीं समझी जाती। पात्रों के बारे में केवल कुछ शब्द कह दिये जाते हैं, शेष व्यक्तित्व पात्रों के कार्य-कलापों द्वारा उभार दिया जाता है। वर्मा जी इस प्रकार की चरित्र-चित्रण शैली के प्रतिनिधि है। 'मृगनयनी' या 'लाखी' के बारे में पाठक को पहले ही सब कुछ नहीं बता दिया गया। ज्यों-ज्यों हम उनके समीप आते जाते हैं, त्यों-त्यों हमें उनके स्वभाव का परिचय मिलता है। जहाँ कोई नवीन स्थिति आ जाती है, लेखक पात्रों के स्वभाव के बारे में थोड़ा सा बतला देता है और वह परिचय केवल स्वभाव के अंश का दिग्दर्शन मात्र होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पात्र के पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण एक ही स्थल पर कर देने से, उसकी रोचकता नष्ट हो जाती है और पाठक पूरी तरह से पूरे व्यक्तित्व को समझने में असमर्थ रहता है। जब उसका केवल एक पहलू एक बार सामने आता है, तो पाठक उसकी जांच-पड़ताल अधिक सुगमता से कर सकता है। यदि प्रारम्भ में ही मृगनयनी या लाखी के बारे में विशद रूप से बतला दिया जाता तो पाठक को उतना आनन्द न आता, जितना उसे तब आता है, जब वह एक स्थल पर मृगनयनी के लक्ष्यभेद के विषय में पढ़ता है, औ दूसरे स्थल पर उसकी उदारता, प्रेम या कला के प्रति उस

विचारों आदि के बारे में परिचय प्राप्त करता है । एक परिच्छेद में राजा मानसिंह के बारे में केवल हम इतना जान पाते हैं कि धार्मिक कट्टरता से बह परे हैं और कर्म के महत्व को पहचानता है । दूसरे परिच्छेद में उसकी वीरता और युद्ध कौशल का परिचय हमें मिलता है ।

पात्रों के स्वभावों का विश्लेषण वर्मा जी जान बूझकर नहीं करते, क्योंकि अत्यधिक विश्लेषण चरित्र-चित्रण के सौंदर्य को मार देता है । साथ ही जहां कहीं उन्होंने पात्रों के स्वभाव का विश्लेषण किया है, उसमें उन्हें पूरी पूरी सफलता मिली है । माँडू के सुलतान गयासुद्दीन का चित्र देखिये—

"परन्तु उसका स्वभाव अधीर, उद्धत, कामुक और कपटप्रिय था । मदिरा पीने पर वह सहज स्वाभाविक मानव-सा हो जाता था । पीता अधिक नहीं था परन्तु पी लेने पर उसकी मानवीयता, उपेक्षण और हास्य प्रियता तथा कामुकता बढ़ जाती थी । हिंदुओं के साथ वह अत्याचार नहीं करता था । कट्टरता का वह मजाक उड़ाया करता था—शराब पीने पर— इसलिए मुल्ला वर्ग उससे रुष्ट रहता था । कामुकता के अंधेपन में वह पुरुष और स्त्री की पहचान नहीं रखता था और न खाई खड्डों की परवाह करता था ।"

वास्तव में वर्मा जी ने चरित्र-चित्रण में अभिनयात्मक प्रणाली का आश्रय लिया । पात्रों को वह विभिन्न परिस्थितियों के बीच होकर ले गये हैं । उन परिस्थितियों से संघर्ष करते समय पात्रों ने अपने स्वभाव का परिचय दिया है । मृगनयनी शिकार खेलने में कितना पटु है, यह हमें अनेक अवसरों पर स्पष्ट पता चलता है । लेखक मृगनयनी और लाखी को जंगल में समय समय पर शिकार खेलने के लिये ले जाता है । अरना या नाहर उनके वाणों से बच नहीं पाते । शिकारी के लिए जिस फुर्ती, चालाकी और साहस की आवश्यकता है, वह हमें उन दोनों के कार्यों में पूर्ण रूप से दिखाई देती है । मानसिंह

शिकार खेलने के लिए राई गाँव में आता है, उस अवसर पर लाखी और मृगनयनी की शिकार-कला का परिचय पाठक को मिलता है। इसी प्रकार मानसिंह की वीरता का प्रमाण हमें, सिकंदर और नासिरुद्दीन के साथ युद्ध में मिल जाता है, उसकी प्रजावत्सलता हमें एक झोपड़ी में देखने को मिलती है, जब वह एक निर्धन रुग्ण स्त्री की परिचर्या करता है। उसका कला प्रेम संगीत गोष्ठियाँ और कलाकारों का जमघट और उनके प्रति उसका आदर व्यवहार आदि व्यक्त करते हैं; उसका शासन कौशल, इसी से सिद्ध होता है, कि वह राज्य के प्रत्येक अंग का स्वयं निरीक्षण करता है। अन्य स्थल पर नसीरुद्दीन की कामुकता का परिचय, लेखक ने जलविहार और अप्सराओं के जमघट के द्वारा दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि पात्रों के शील और स्वभाव का विश्लेषण करने की अपेक्षा, वर्मा जी उन्हें कर्म-स्थल के बीच ले जाकर छोड़ देते है और पाठकों को वे इस बात का अवसर देते है कि वे पात्रों के सम्बन्ध में स्वयं अपनी राय बनायें उन्हें पसंद करें या नापसंद।

वास्तव में इस प्रकार की अभिनयात्मक प्रणाली कला की दृष्टि से अधिक मान्य है क्योंकि पात्रों के चरित्र की आलोचना, या उनके स्वभाव पर टीका टिप्पणी यदि लेखक स्वयं करता है. तो पाठक की स्वतंत्रता पर भयानक कुठाराघात होता है। पाठक को स्वयं अपने दिमाग पर जोर देने का मौका ही नहीं मिलता। वह लेखक की सम्मति से इतना प्रभावित हो जाता है कि उसके विचार स्वतंत्र नहीं रह जाते। इसलिये चरित्र-विश्लेषण की ओर अधिक न ध्यान देकर वर्मा जी ने पाठक को सोचने का अधिक मौका दिया है।

वर्मा जी ने एक दूसरी प्रकार की चरित्र-चित्रण प्रणाली को जन्म दिया है। उसे हम प्रतीकात्मक प्रणाली (Symbolic Characterism) के नाम से पुकारेंगे। इस प्रणाली के अन्तर्गत

उन्होंने किसी एक व्यक्ति के स्वभाव के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया वरन् एक विचारधारा को; एक सिद्धान्त को पात्र के रूप में मूर्तिमान कर दिया है। उदाहरण के लिये मानसिंह, विजयजंगम, बोधन, बैजूनायक या नसीरुद्दीन को ले लीजिये। मानसिंह के चरित्र द्वारा हम एक मनुष्य का परिचय नहीं पाते हैं वरन् आदर्श राजतन्त्रवाद की पूरी झलक हमें देखने को मिलती है। इसी प्रकार नासिरुद्दीन में हमें राजतंत्र का भ्रष्ट रूप देखने को मिलता है। विजयजंगम में लिङ्गायत सम्प्रदाय का पूरा चित्र देख लीजिये, विजय का जीवन यदि आप देखें तो आप को स्पष्ट लिङ्गायत सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का सार उसमें दिखाई देगा। कार्य क्रम में रत और छुआछूत से परे विजय स्वयं लिङ्गायत सम्प्रदाय की मूर्ति है। बोधन, ब्राह्मण जाति का प्रतिनिधि है—उसके चरित्र द्वारा ब्राह्मण धर्म का चित्र अंकित कर दिया गया है। जब बैजूनायक की कला और उसकी उपासना के विषय में हम पढ़ते हैं, तो स्पष्ट पता चल जाता है कि स्वयं कला बैजू के रूप में अवतीर्ण हुई है। इस प्रकार के चरित्र आकर्षक न लग कर विचित्र जान पड़ते हैं। कारण स्पष्ट है। वे एक-एक विचारधारा के प्रतीक हैं, इसलिये उनमें मानवहृदय कहाँ दिखाई दे सकता है। यह प्रणाली बिल्कुल नई है, इसलिये उसके प्रयोग में पूर्ण कौशल अभी वर्मा जी नहीं दिखा सके हैं।

इन सब प्रकार की प्रणालियों का अध्ययन करने के बाद हम वर्मा जी की चरित्र चित्रण कला की कुछ और विशेषताओं पर विचार करेंगे। वर्मा जी ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में आदर्शवाद और यथार्थवाद का बहुत सुन्दर समन्वय किया है। इस लिये इस तत्व का उन्होंने कई स्थलों पर मृगनयनी के मुख से प्रतिपादन भी करवाया है। जीवन का संघर्ष एक वास्तविकता है। उससे मुँह चुराना आदर्श नहीं है। हमें अपनी कल्पना के रंगीन लोक में फँस कर संसार की आवश्यकताओं से मुँह नहीं

मोड़ लेना चाहिये। इसके विपरीत यह भी न भूल जाना चाहिये कि मनुष्य इन्हीं झगड़ों में पड़े रह कर उन्नति नहीं कर सकता। संसार की वास्तविकता 'सत्य' है, परन्तु हमें सत्य के साथ साथ 'शिव' और 'सुंदरम्' को भी समन्वित करना होगा। मनुष्य पशुत्व और देवत्व के बीच की कड़ी है, इसलिये उसे अपने दोनों सिरों को जोड़े रखना होगा। मृगनयनी के चरित्र के द्वारा वर्मा जी ने उसी प्रकार के संतुलित जीवन का आदर्श रक्खा है, संयम जिसकी मुख्य विशेषता है। आदर्श और यथार्थ के समन्वय का सिद्धान्त वर्मा जी ने मृगनयनी के मुँह से कहलाया है:—

"वीणा को बजाते-बजाते काम पड़ने पर यदि तुरंत तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते-सोते, संकट आने पर यदि उछल कर कमर न कसी, ध्रुपद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरंत गरज कर चुनौती न दे पाई.....तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुवपद की तानों का काम क्या है!"

आदर्श और यथार्थ के इस सुंदर समन्वय से चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता आगई है।

चरित्र चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके द्वारा उपन्यासकार पात्रों में जीवन डाल देता है। पात्रों के व्यक्तित्व में इस प्रकार प्राण भर जाता है कि वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना लेते हैं। पात्रों में प्राण आते ही वे उपन्यासकार के हाथ से स्वतंत्र हो जाते हैं। यह कहना कठिन है कि पात्रों में इस प्रकार प्राण डाल कर लेखक भूल करता है, या वह अपनी कला का परिचय देता है। थैकरे जैसे उच्चकोटि के उपन्यास लेखक ने स्वीकार किया है कि "मैं अपने पात्रों पर नियंत्रण कायम नहीं रखता, वास्तव में मैं उनके नियंत्रण में हो जाता हूँ और वे जिधर चाहते हैं, मुझे मोड़ ले जाते हैं।" उपन्यास लिखने के बाद लेखक स्वयं आश्चर्य में पड़ जाता है कि उसने पात्रों की सृष्टि कैसे की। पात्रों में स्वतंत्र सत्ता का आविर्भाव होना अवश्

एक कला है और लेखक की मौलिकता तथा प्रतिभा का परिचायक है। वर्मा जी के पात्र इस दृष्टि से, इतने सजीव नहीं हैं। उनके कठोर हाथों से छूट कर वे इधर उधर भाग नहीं सकते। वे असली सूत्रधार है और उनके पात्र उनके नियंत्रण में चलने वाले अभिनेता हैं।

मृगनयनी

भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास में राजपूतों की वीरता की कहानी स्वर्ण-अक्षरों में अंकित है और उसी के साथ साथ राजपूत स्त्रियों के त्याग और शौर्य की कहानियाँ भी अमर हैं। मुसलमानों के अंधाधुंध आक्रमणों की ज्वाला में जलते हुये भारत को राजपूत ललनाओं ने अनेक बार उबारा है। चित्तौड़ की रानी पद्मिनी और पृथ्वीराज की पत्नी चम्पादे ने भारतीय स्त्री जाति के चरित्र को आदर्श के रूप में संसार के सामने रक्खा है। इन रानियों ने न केवल वीरता का परिचय दिया, वरन् वे कला, साहित्य और संगीत की भी पूर्ण ज्ञाता थीं। ग्वालियर की रानी मृगनयनी भी उक्त इतिहास प्रसिद्ध वीर बालाओं में एक है।

ग्वालियर राज्य के राई नामक गाँव में पहले पहल निन्नी के रूप में हमें मृगनयनी के दर्शन होते हैं। उसने अभी यौवन काल में पदार्पण किया है। गाँव के मुक्त वातावरण में पलकर और स्थानीय जंगलों में बाण-विद्या का अभ्यास करके, वह साहसी, पराक्रमी और बाण विद्या में निपुणा बन बैठती है। सिकंदर लोदी के आक्रमण से राई गाँव ध्वस्त हो जाता है। निन्नी के माता-पिता भी मारे जाते हैं, केवल उसका भाई अटल जीवित बच रहता है। मातृ-पितृ-वियोग एक कन्या के लिये बड़ी दुखद घटना है परंतु वीरबाला मृगनयनी इस धक्के को साहस के साथ सहन करती है। आक्रमण के बाद ही पड़ने वाले होली के

त्योहार में हम उसे उमंग के साथ रँगे-खेलते हुये पाते हैं। वह अभी अल्हड़ बाला है—सुख दुख वह क्या जाने। गावों में जिस प्रकार नवयुवतियाँ 'हँसी दिल्लगी' में सुख अनुभव करती हैं, उसी प्रकार मृगनयनी भी अपनी सखी लाखी के साथ विनोद करती है।

मृगनयनी स्वभाव से ही वीर बाला थी। जब वह केवल एक ग्राम बाला के रूप में राई के खेतों में धनुष बाण लेकर मचान पर बैठती है, तभी उसके मन में वीरता के भाव उदय होते हैं। स्त्री 'अबला' होती है, यह विचार उसे दुख देता है। स्त्रियों का 'जौहर' उसे कायरता की निशानी मालूम पड़ती है। उसे आश्चर्य होता है कि स्त्रियाँ इतनी निर्बल क्यों होती हैं। वह सोचती है—

राजा लोग अपने थोड़े से भाई बांधवों को किसी गढ़ में बंद करके लड़ते-लड़ते मर जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ चिता में जल कर भस्म हो जाती हैं। क्या ये स्त्रियाँ तीर कमान चलाना नहीं जानती होंगी····· रानियाँ तो पर्दे में मुंह छिपाये बैठी रहती हैं। सुनती तो आई हूँ; परन्तु क्या उनके हाथ पैर इतने निकम्मे होते होंगे कि अपने ऊपर आँख और हाथ डालने वाले पुरुष को घूँसे से धरती न सुंघा सकें ?·····चिता में जल कर मरें स्त्रियों पर हाथ डालने वाले !!! मैं तो कभी इस तरह नहीं मरने की।" (पृ० १७, १८)

मनुष्य अपने भावी जीवन का परिचय, बाल्यकाल और यौवन में ही दे देता है। वीरता, आत्मनिर्भरता और स्वावलम्ब जैसे गुणों को बीज रूप में ही हम निन्नी के कार्यों में पाते हैं। नाहर, अरना भैंसे और जंगली सुअर उसके निशाने से कभी नहीं बचते। सिकंदर लोदी के आक्रमणों के बाद राई गाँव की खेती नष्ट हो चुकी थी; लोगों के लिए पेट भरना एक समस्या थी, ऐसे समय निन्नी अपनी सखी लाखी के साथ जंगल में जाकर शिकार करती है। नटों के द्वारा षड्यंत्र रचे जाने पर कई तुर्क सवार मृगनयनी और लाखी को पकड़ने के लिए आते हैं।

Library

वह साहसपूर्वक उनका सामना करती है और उन्हें मार गिराती है। इसी प्रकार राजा मानसिंह के द्वारा आयोजित 'शिकार' के मौके पर मृगनयनी की सफलता सर्वश्रेष्ट होती है। अकेले पैदल ही वह एक शेर और एक अरने भैसे को मार गिराती है। अपने इन्हीं गुणों के बल पर वह प्रसिद्ध हो जाती है, और मानसिंह जैसे एक राजा को वह आकर्षित करने में समर्थ होती है।

मृगनयनी रूप, गुण और यौवन-सभी दृष्टि-कोणों से अद्वितीय नारी है। उसमें शारीरिक सौंदर्य है पर वह कोमलांगी नहीं है। वह 'हरम' में पड़ी रहने वाली उन रानियों से बिल्कुल भिन्न है, जो फूल के वजन से हल्की होती हैं, और चलने से जिनके पैर में छाले पड़ जाते हैं। राज महल में सुख और विलास में पड़कर वह निकम्मी और अकर्मण्य नहीं बन जाती। वह संयम पर विश्वास करती है, इसी से उसके व्यक्तित्व का विकास रुकता नहीं। उसमें अद्भुत जीवनी शक्ति है। यह शक्ति जो पहले गांव में रहते समय बहिर्मुखी थी, रनिवास में उसके पहुँचने पर अन्तर्मुखी हो उठती है। रानी बन जाने पर वह 'शिकार' और 'लक्ष्य भेद' के जीवन से अवश्य दूर हो जाती है, किन्तु वह अपनी शक्ति को कला की उपासना में लगा देती है। एक गाँव की गूजरी, संगीत और नृत्य की कुशल कलाकार बन जाती है। उसके कौशल को विजयजंगम और बैजू बावरा जैसे कलाविद् मान लेते हैं। कला के क्षेत्र में उसका मौलिक योग है टोड़ी गूजरी जैसे क्लासिकल राग, मृगनयनी के नाम से ही प्रसिद्ध है। चित्र कला में भी उसका अच्छा ज्ञान था। थोड़े ही दिनों में इन कलाओं को सीख लेना, उसकी कुशाग्रबुद्धि का सबसे बड़ा प्रमाण है।

बुद्धिमानों ने कहा है कि स्त्री अबला है। वह लता है जो बिना किसी पुरुषरूपी वृक्ष के जीवित नहीं रह सकती। पुरुष पर स्त्री की निर्भरता जगत्प्रसिद्ध है; किन्तु यह न भूलना चाहिए कि

स्त्री एक प्रेरक शक्ति है। वह पुरुष को गौरव के उच्च सिंहासन पर बिठा सकती है, मृगनयनी इस सत्य को सिद्ध करके दिखा देती है। वह मानसिंह को विलास में पड़े रहने की अपेक्षा, संयम की ओर प्रेरित करती है। कला की उपासना एक अच्छी बात है, परन्तु संगीत और नृत्य को ही जीवन समझ बैठना एक भारी भूल है। वह मानसिंह को 'संतुलित' जीवन का महत्व बताती है। जो कला मनुष्य के हृदय और आत्मा को निर्बल बना दे, वह कला नहीं—मृगनयनी के विचार देखियेः—

"वीणा को बजाते बजाते काम पड़ने पर यदि तुरंत तलवार न उठ पाई, कोमल सेज पर सोते सोते, संकट आने पर यदि उछल कर कमर न कसी, ध्रुवपद को गाते गाते, शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरन्त गरज कर चुनौती न दे पाई·····तो ऐसी वीणा, सेज और ध्रुवपद की तानों का काम ही क्या ?

मृगनयनी उन स्त्रियों में नहीं है, जो अपने पति को कायरता, मोह और अकर्मण्यता के समुद्र में डुबो कर मार डालती हैं। मानसिंह की शक्ति मृगनयनी; और उसकी इतिहास प्रसिद्धि की नींव मृगनयनी के प्रेम से बनी है। जब वह सिकंदर को घूस देकर टालना चाहता है तो मृगनयनी का उद्बोधन उसके मोह को भंग करके उसे कर्तव्य पथ पर ला खड़ा कर देता है।

मृगनयनी साधारण स्त्रियों की तरह ईर्ष्या, द्वेष और लोभ जैसे अवगुणों से पूर्ण नहीं है। राजा मानसिंह के आठ रानियाँ और थीं। मृगनयनी को कभी कभी यह सोचना अवश्य पड़ता है कि राजा मानसिंह ने मुझसे पहले आठ रानियों से विवाह किया है। किसी समय वे मेरी ही तरह उनसे प्रेम करते रहे होंगे; सम्भव है एक दिन वे मुझे भी भूल जायँ। इन भावनाओं को वह प्रश्रय नहीं देती। संदेह और अविश्वास उसके हृदय में घर नहीं कर पाते। बस यहीं पर वह सुमन मोहिनी—राजा की पटरानी—

से कहीं श्रेष्ठ सिद्ध होती है। वह अपने पति के प्रेम पर पूर्ण विश्वास करती है।

संयम और निर्लिप्ति, दो गुण ऐसे हैं जो मनुष्य को साधारण स्तर से ऊँचे उठा देते हैं। मृगनयनी में यह दोनों गुण वर्तमान हैं। विलास से उसे घृणा है, इसी के फल स्वरूप आयु के साथ साथ उसका सौन्दर्य बढ़ता जाता है और साथ ही उसका ज्ञान भी विकसित होता है। मृगनयनी को स्वार्थ छू भी नहीं गया था। उसका मानसिंह पर इतना अधिकार था कि यदि वह चाहती तो अपने पुत्रों को ही राज्य दिलाती परन्तु राज्य का हित इससे न होता। सुमन मोहिनी दुष्ट प्रकृति की थी—राज्य में गद्दी के लिये युद्ध हो सकता था। मृगनयनी ने अपनी दूरदर्शिता के बल पर इस खतरे का अनुमान पहले ही कर लिया और उसने सुमन मोहिनी के पुत्र को ही राज्याधिकारी माना। वह अन्य रानियों से कभी घृणा न करती थी, यद्यपि वे उसका समय समय पर अपमान भी किया करती थी।

मृगनयनी के चरित्र की एक विशेषता और है, जो उसके स्त्री-स्वभाव की परिचायक है। स्त्रियों को अपना मातृगृह बहुत प्यारा होता है। ससुराल जाने पर सद्यःविवाहिता नवयुवती, अपने पति प्रेम की तन्मयता के क्षणों में भी अपने गाँव या शहर की प्रत्येक वस्तु को बड़े भावमय दृष्टिकोण से देखती है। वहाँ के रहने वाले लोग, वहाँ के पेड़, वहाँ के पक्षी, अपनी सखियाँ, सभी याद आती रहती हैं। बचपन की वे स्मृतियाँ उसके लिये बहुमूल्य धरोहर के रूप में दिखाई देती है। वह सोचती है—"जहाँ भी रहूँ इस प्यारी नदी की दमकती हुई कल्लोलिनी धार को अपने पास में रक्खूँ। बाहर जाऊँ तो क्या इसको बाँध कर, समेट कर नहीं ले जाया सकता ?" आदि (पृ० १७) मानसिंह के साथ जाने के पहले, वह उनसे अनुरोध करती है कि साँक नदी का पानी ही उसे पीने को मिले। राजा साँक नदी से नहर निकलवा

कर ग्वालियर तक ले जाते हैं। अपनी सखी लाखी से विदा होते समय हृदय फटने लगता है और वह लाखी को ग्वालियर बुला लेने का बचन देती है। यही नहीं, जब लाखी और अटल राई गाँव का त्याग करके चले जाते हैं, तो मृगनयनी उन्हें ढूँढने की प्रार्थना मानसिंह से करती है। समाज द्वारा त्यक्त होने पर वह लाखी और अटल को आश्रय देती है। अन्य रानियाँ लाखी का निरादर करती हैं किंतु वह लाखी को अपनाये रहती है। मृगनयनी रानी थी, स्वर्णाभूषणों और रत्नों की कमी न थी किंतु अपने भाई के द्वारा उपहार में दी हुई चाँदी की हँसुली वह गले में पहने रहती है। दूसरी रानियाँ उसका उपहास करती हैं किंतु वह कहती है:—

"मैं अपनी राई को, अपने उन दिनों को जब स्वतंत्र थी, अपनी उस साँझ को जब भैया यहाँ से लौट कर इसे ले आये, कभी नहीं भूल सकती। महाराज ने उतार डालने के लिये कहा, पर नहीं माना।"

(पृ० ३१५)

मनुष्य के चरित्र की विशेषता है—उसका व्यक्तित्व। मृगनयनी का अपना निजी व्यक्तित्व है। विचारशक्ति, उदारता और सहृदयता उसके व्यक्तित्व के मुख्य स्तम्भ हैं। इसी से कलाकार भी उसका लोहा मानते थे और सैनिक प्रवृत्ति के लोग भी उसका आदर करते थे। उसका चरित्र आधुनिक स्त्री समाज के लिये एक आदर्श है। उसमें स्त्रियों के गुण हैं परन्तु अवगुण नहीं।

लाखा रानी

लाखी की कहानी दुखभरी है। दुख से ही उसका आरम्भ होता है और दुख में ही उसका अंत। उपन्यास के स्त्री-पात्रों में, लाखी ही ऐसी है जिसका जीवन संघर्षपूर्ण है। गरीबी, समाज और प्रेम, इन तीनों क्षेत्रों में उसे भीषण संघर्ष करना पड़ा; किंतु

लाखी की सबसे बड़ी विशेषता है उसका अदम्य उत्साह । उसका यह गुण पाठक के मन को आकर्षित करता है ।

लाखी पर भी सिकन्दर के आक्रमण का भीषण प्रभाव पड़ा था । उसका गाँव उजड़ गया था और वह अपनी माँ के साथ आकर राई गाँव में बस गई । वह अहीर कन्या थी, और सारे गाँव में वह सबकी लड़की समझी जाती थी, इसी से उससे कोई हँसी दिल्लगी नहीं करता । उसके विनोद और आमोद-प्रमोद का साधन केवल मृगनयनी का निष्कपट प्रेम है । दोनों सखियाँ आपस में बड़े स्नेह के साथ मिलजुल कर रहती हैं । जहाँ दो में पवित्र प्रेम होता है, हृदय का सच्चा मिलन होता है, वहाँ जाति-बंधन या धर्मबंधन कोई भी रुकावट नहीं बन सकते । लाखी अहीर जाति की है और निन्नी गूजर; किंतु दोनों एक साथ खाती, खेलती, उठती और बैठती हैं । प्रेम के कारण ही लाखी को मृगनयनी अपनी भाभी मान लेती है । लाखी और मृगनयनी आजीवन स्नेहमय जीवन बिताती हैं ।

लाखी का जीवन आरम्भ से ही दुःखमय रहता है । "लाखी के खेती नहीं थी । पहले बहुत से पशु थे, परन्तु आक्रमण काल में एक गाय को छोड़कर बाकी सब या तो मार डाले गये या मर गये । बाप मारा गया और सयाना भाई भी । अब माँ-बेटी गाय के दूध और दूसरों की मजदूरी पर जीवन निर्वाह कर रही थीं । माँ जंगल में से कभी-कभी कुछ फल-मूल भी ले आती थी ।" (पृ० २५) लाखी को शुरू से ही रोटी के लाले पड़े थे । साथ ही कष्ट और कठिनाइयों के बीच पल कर लाखी में वीरता, और साहस जैसे गुण उदय हो जाते हैं । वह निन्नी के साथ शिकार का, और तीर चलाने का अभ्यास करती है । थोड़े ही दिनों में वह बाण-विद्या में निपुण बन जाती है । लाखी कुशाग्र-बुद्धि है । उसे किसी भी काम को सीखने में देरी नहीं लगती । नटों द्वारा रस्से पर नृत्य करने की कला का, वह बिना बताये

अभ्यास कर लेती है। रानी मृगनयनी के संसर्ग में रहकर वह चित्रकला, संगीत और नृत्य भी सीख लेती है।

वीरता में लाखी मृगनयनी से कम नहीं, यद्यपि शरीर से वह उतनी सबल नहीं। जंगल में शिकार खेलते समय, वह निन्नी से एक कदम आगे रहती है। लक्ष्यभेद की कला उसने जल्दी ही सीखी थी, पर निशाना अचूक था। अरना भैंसे और शूकर उससे बच न पाते थे। (पृ० ५७-५८) उसके सौंदर्य और वीरता की धाक जम गई और मालवा-गुजरात के सुल्तान उसे पाने के लिए लालायित हो उठे। मृगनयनी के साथ जंगल में घूमते हुए वह तुर्कों से घिर जाती है, किन्तु वह बड़े साहस के साथ उनका सामना करती है। नरवरगढ़ के घेरे के अवसर पर, जब नट लोग उसे और अटल को बहकाकर भगा ले जाना चाहते हैं, और रस्से के सहारे नरवर पर तुर्कों के चढ़ आने की सम्भावना होती है, तो लाखी ही गढ़ की रक्षा करती है। इसी प्रकार जब राई गढ़ी जाती है, तो लाखी की वीरता ही काम आती है। वह अकेले ही कई आक्रमणकारियों को मार गिराती है और स्वयं भी लड़ाई पर जाती है। उसके बलिदान के फलस्वरूप राई गढ़ी बच जाती है।

दूरदर्शिता, चालाकी, गंभीरता और सूझ, यह वीरता के सहायक गुण हैं। लाखी में यह सभी गुण वर्तमान हैं। वह किसी संकट में पड़ने पर अपना मानसिक संतुलन खो नहीं देती और ईंट का जवाब पत्थर से देती है। साधारण स्त्रियों की उच्छृंखलता का उसमें पूर्ण अभाव है। लाखी नटों के फंदे में फँस जाती है। वे लोग उसे माँडू के सुल्तान गयासुद्दीन के हरम में पहुँचा देना चाहते हैं। पिल्ली एक तीर से दो चिड़िया मारना चाहती है। एक ओर वह लाखी को सुल्तान के पास भेजकर मुँहमाँगा इनाम लेना चाहती है और दूसरी ओर लाखी के प्रियतम अटल पर भी वह अपना अधिकार कर लेना चाहती

है। पिल्ली जब नरवर में आकर, अपने फंदे को खूब मजबूत कर लेती है, तो लाखी पर सारा भेद प्रकट कर देती है। उस समय "लाखी के नथने फूल गये। श्वास-प्रश्वास के वेगों के बीच में छाती उठने-गिरने लगी। गले की नसें उभर आयीं। आँखों में आँसू आ गये।" पिल्ली के प्रस्ताव ने जले पर मरहम का काम किया परन्तु लाखी बड़े मजबूत हृदय की ठहरी। उसने पिल्ली के सारे दाँव-पेंच व्यर्थ कर दिए। वह अपने भावों को दबा गई। सुल्तान की बेगम बनने की बात से ही वह घबरा रही थी। 'अटल पिल्ली के हाथ में पड़ जायगा' यह सुनकर उसको भीषण धक्का लगा परन्तु लाखी सँभल गई। वह चालाकी से पिल्ली को प्रलोभन देती है—"यदि सब बातें ठीक ठीक होती चली गयीं, तो नरवर का आधा राज तुमको।" इसके बाद योजना के अनुसार नट लोग किले प्राचीर से रस्से द्वारा बाहर होना चाहते है। लाखी बड़ी चालाकी से अपने को और अटल को बाद में जाने का निश्चय करती है। साथ ही लाखी सारी बातें और सारा कार्यक्रम ऐसे ढंग से निभाती है कि पिल्ली को जरा भी संदेह नहीं होता, यहाँ तक अटल से भी वह सब बातें छिपाये रखती है। जब पिल्ली उतरने लगती है, तो लाखी रस्सा काट देती है। इस प्रकार वह अपने को, अटल को और नरवरगढ़ को शत्रु के घेरे से बचा लेती है। यह सारी घटना लाखी की स्थिर बुद्धि की परिचायका है।

अब अटल के प्रति लाखी के प्रेम की बात लीजिए। वह अटल को अनन्यभाव से प्रेम करती थी। लाखी के प्रेम में अद्भुत दृढ़ता है। लाखी और अटल अलग-अलग जाति के हैं। उस जमाने में जब जाति बंधन बड़ी कठोरता से समाज को बाँधे हुए थे, दो विभिन्न जाति वाले युवक-युवती का प्रेम एक भीषण दुःसाहस था परन्तु प्रेम इन सब बंधनों से परे है। अटल और लाखी के हृदयों में प्रेम की जड़ें मजबूती से जमती चली गयीं।

लाखी को समाज का भय हर समय रहता है, परन्तु वह अपने हृदय पर काबू नहीं रख पाती। एक बार जंगल में दोनों खुल कर बात करते हैं। अटल अपना प्रेम प्रकट करता है, लाखी समाज का भय दिखाती है। अटल कहता है—

"तुम्हारा मन पक्का है ?"

"मेरे मन से नहीं अपने मन से पूछो।"

लाखी के इस उत्तर में निश्चय और दृढ़ता की सीमा नहीं। समाज का भय पुरुष की अपेक्षा नारी को ज्यादा होता है परन्तु लाखी का निश्चय अडिग है। जीवन भर अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए, समाज की उपेक्षा को सहन करते हुए भी, उसने कभी भी अपने मन को नहीं डिगाया। एक ओर समाज का भय, उपेक्षा, और गरीबी थी, दूसरी तरफ मालवा का विलास, चमक-दमक-पूर्ण जीवन; पर उसने पहला मार्ग ही अपनाया, दूसरा नहीं।

स्त्रियों को स्वभाव से ही कपड़ों और गहनों से प्रेम होता है। लाखी को भी नटों ने गहने और कपड़ों के जाल में फँसा लिया। जब पिल्ली उसको महीन रेशमी कपड़े पहनाती है, तो उसका मन-मयूर नाच उठता है परन्तु लाखी का अभूषण-प्रेम उसे कभी भी पतन की ओर नहीं ले जाता। कुछ स्त्रियां सोने चांदी की इतनी शौकीन होती हैं कि वे अपना चरित्र भी बेच सकती हैं। लाखी को गहने अच्छे अवश्य लगते हैं परन्तु जब पिल्ली उसे बताती है कि मालवा के सुलतान की बेगम होने पर वह गहनों से लद जायगी तो उसकी आंखों से चिनगारियां निकलने लगती हैं। वह गहने के बदले में अटल को नहीं बेच सकती। अटल के खोने की कल्पना से ही उसे दुख होता है। वह पिल्ली से इसका बदला चुकाती है। पिल्ली के समाप्त होने पर कई दिन का छिपा हुआ उद्वेग फूट कर बाहर निकल पड़ता है:—

"डायन ! चुड़ैल !! सुलतान की गोदी में बिठलाना चाहती थी !!! अब ले ले नरवर का आधा राज।"

प्रियतम के खो जाने का भय स्त्री के लिए सबसे अधिक खटकने वाला होता है। लाखी को दिन-रात नींद नहीं आती। पिल्ली के फंदे से मुक्त होने पर ही वह निश्चिंत होती है। अटल को कुछ पता नहीं; वह पूछता है—

"मेरी समझ में नहीं आया कि यह सब क्या हुआ ? सुल्तान की गोदी में बिठलाने की बात क्या थी ?

"भूल गये क्या, राई के पेड़ के नीचे खलिहान के पास किसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ कर क्या कहा था ?"

"कभी नहीं भूल सकता।"

"उसी को भुलाने और मिटाने के लिए इस चुड़ैल और उन भूतों ने यह सब जाल रचा था। तुम्हारी गोदी में अंगारे बनकर पिल्ली आती और मुझको राख बनाकर सुल्तान के पैरों में डाल दिया जाता।" लाखी हिचकियों रोने लगी। (पृ० २८६)

प्रियतम को अपनी शत्रु पिल्ली से बचा लेने का आनन्द उसके रोने से प्रकट हो जाता है। लाखी को फिर भी संतोष नहीं होता। वह सोचती है कहीं अटल पिल्ली से प्रेम न करने लगा हो। वह इस संदेह को छिपा नहीं सकी:—

"जो बात उसके (लाखी के) मन में उखड़ उखड़ पड़ रही थी, पूछ डाली, 'क्या उस पिल्ली पर कुछ मन चला गया था ?"

जब अटल इस बात से चोट खाकर उबल पड़ता है, तो लाखी को विश्वास हो जाता है। वह कहती है—'अरे तो मुझको माफ करो कुँवर जी। भ्रम में पड़ गई। पर उसको मार दिया तो अच्छा किया न मैंने ?'

अन्य स्थल पर जब लाखी, राजा मानसिंह के साथ ग्वालियर पहुँच जाती है, तो वहां पर कला से मिलती है। शुरू में जब एक बार अटल ग्वालियर गया था, उसे कला को देखकर

लाखी का भ्रम हो गया था। जब अटल और लाखी ग्वालियर दुबारा पहुँचते हैं, तो लाखी कला की उपस्थिति से चिंतित होती है। कला को अपने से मिलता जुलता पाकर आश्चर्य तो कम हुआ, कुढ़न अधिक हुई।

अटल से अकेले में कहा—'फिर कहीं वैसे न बौखला जाना, जैसे कला को मेले में देखकर हो गये थे।'

अटल हँस पड़ा—'मैं क्या मूर्ख हूँ जो तुम्हारे उसके अन्तर को न पहिचान पाऊँगी?'

"लाखी की कुढ़न विलीन हो गई।" (पृ० ३०२) स्त्रियोचित ईर्ष्या का अभाव लाखी में न था।

लाखी की वीरता और प्रेम ने उसके चरित्र को गौरवमय बना दिया है समाज द्वारा परित्यक्त होने और अपमानित होने पर भी, लाखीरानी की इज्जत थी। नरवरगढ़ और राई दोनों जगहों पर साधारण जनता उसका सामाजिक बहिष्कार करती थी, किन्तु उसकी वीरता और त्याग के आगे सर झुकाती थी। उसका सर्वत्र सम्मान होता है। राजा मानसिंह उसका महत्व पहचानते हैं। नरवर पहुँच कर एक अपरिचित स्त्री की वीरता का हाल सुनकर वे फौरन ताड़ लेते हैं—"इतना साहस लाखी में ही हो सकता है।" वे उसे किसी ठाकुर से कम नहीं समझते और वे न्याययुक्त ढंग से ही उसे सम्मान देते हैं। लाखी ने कष्ट सहे, दर दर की खाक छानी, मगर उसने अपने चरित्र को स्थिर रखा, यही उसकी महानता है।

राजा मानसिंह

राजा मानसिंह उन ऐतिहासिक व्यक्तियों में से हैं, जिनकी गाथा किंवदन्तियों में लिपटकर जन साधारण में घर कर लेती है जिस प्रकार उज्जैन के राजा विक्रमादित्य और धारा नगरी के राजा भोज के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ जनश्रुति के रूप में

चली आती हैं, वैसे ही राजा मानसिंह की कहानी में ऐतिहासिक तथ्य और काल्पनिक तत्व को अलग-अलग कर सकना कठिन है। श्री वृन्दाबनलाल वर्मा ने राजा मानसिंह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व में कल्पना का पुट देकर उसे इतिहास के अंधकार से बाहर निकाल कर रख दिया है।

मानसिंह १५ वीं शताब्दी में ग्वालियर का राजा था। वह युग भारतीय इतिहास का अंधयुग है। देश में संगठन और व्यवस्था का अभाव था। भारत में मुसलमान जम चुके थे। धर्म के आधार पर उनका संगठित बल कमजोर पड़ चुका था। भारत में बहती हुई फूट की हवा ने मुसलमानों पर भी अपना असर पैदा कर दिया था। दिल्ली का सिकंदर लोदी, मालवा का गयास, और गुजरात का महमूद बघर्रा सभी आपस में शत्रु-भाव रखते थे। मेवाड़ के राणा कुम्भा और ग्वालियर के राजा मानसिंह हिंदू थे पर उनमें भी पूर्ण मैत्री न थी। क्या हिंदू राज्य, क्या मुसलमान राज्य, सभी एक दूसरे से शक्ति प्राप्ति के लिये लड़ रहे थे। आये दिन आक्रमण होते थे। शांति का अभाव था। ऐसी परिस्थितियों के बीच राजा मानसिंह का सफल प्रणय, कला की उपासना और युद्ध यात्रा, सभी प्रशंसनीय जान पड़ते है। 'परिचय' के अन्तर्गत उपन्यासकार ने स्वयं लिखा है—

"ऐसे युग में, इतने संकटों में भी मानसिंह हुआ। और उसने तथा उसकी रानी मृगनयनी ने जो कुछ किया उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे सामने है.....।"

राजा मानसिंह का विशेष गुण, उसकी बीरता और अपराजेय साहस है। वह उस जमाने का राना तोमर राजपूत है, जब व्यक्तिगत वीरता की पूजा होती थी। उसके समकालीन राणा साँगा के बदन पर अस्सी घाव थे और उनके कई अंग नष्ट हो चुके थे। राजा मानसिंह उसी युग के अनुरूप स्वयं युद्ध में जाता था। उसने दिल्ली के सुलतान सिकंदर लोदी, मालवा के गया-

सुदीन और गुजरात के महमूद बघर्रा से लगातार युद्ध किया और एक बार भी पराजित न हुआ। सिकन्दर के कई आक्रमण विफल हुये, यद्यपि उससे ग्वालियर राज्य को काफी धक्का लगा। राजा मानसिंह युद्ध-कला और सैन्य-संचालन का ज्ञाता था। उसने मालवा के गुजरात के आक्रमणों से सुरक्षा के लिये, नरवर गढ़ को जो ग्वालियर की सीमा पर है, चौकी के रूप में बना रक्खा और राई गढ़ी का निर्माण करके, उसने सिकंदर के ख़िलाफ़ क़िलेबन्दी कर ली इसी का परिणाम था कि दोनों सुल्तानों को कई बार पराजय खानी पड़ी। परिच्छेद ६५, मानसिंह की युद्ध-कला का पूर्ण परिचय देता है।

१४ वीं और १५ वीं शताब्दी में कई हिन्दू राजा अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। सम्भव है, वे मानसिंह से इस दृष्टिकोण से अधिक बड़े सिद्ध हों; परन्तु उनमें मानसिंह के समान सर्वतोमुखी प्रतिभा न थी। वह संगीत, चित्रकला, और नृत्य का प्रेमी था। उसके दरबार में अनेक कलाकार आश्रय लिये हुये थे। दक्षिण से आया हुआ विजय जंगम, और चंदेरी राज्य का बैजू, अपने वाद्य और संगीत के इतिहास प्रसिद्ध कलाकार हो चुके हैं, मानसिंह के दरबारी रत्न थे। राजा केवल इनका आश्रयदाता ही न था, वरन् स्वयं नृत्य और संगीत में अच्छी गति रखता था। समय-समय पर युद्ध से फ़ुरसत मिलने पर नृत्य और संगीत की योजना होती थी और राजा अपनी सभी रानियों को कला के अभ्यास के लिये पूरा अवसर देता था। उसकी प्रेरणा से ही मृगनयनी जो एक ग्रामीण युवती थी, कलाओं में पारंगत हो गई। यही नहीं, कलाओं के प्रति जन-साधारण में अभिरुचि पैदा करने के लिये, राजा मानसिंह ने आचार्य बैजू बावरा के संरक्षण में ग्वालियर में एक संगीत विद्यापीठ की स्थापना की। यह विद्यापीठ आज भी भारत का श्रेष्ठ केन्द्र है।

राजा मानसिंह भवन-निर्माण-कला में भी विशेष रुचि रखता था। अनेक शिल्पकार उसके आश्रित थे। ग्वालियर के मानमंदिर, गूजरीमहल और अनेक विजयस्तम्भ उसके द्वारा निर्मित हुये। साँक नदी से लेकर ग्वालियर तक उसने नहर बनवाई जिसके अवशिष्ट चिन्ह आज भी वर्तमान हैं।

राजा मानसिंह जिस युग में राज करता था, वह युग सामंतवाद और निरंकुश शासन का था। राज्य प्रणाली किसी भी ढंग की हो, चाहे वह राजतंत्र हो या प्रजातंत्र, समाजवाद हो या साम्यवाद, पूँजीवाद हो या तानाशाही, सब में गुण और दोष होते है। जहाँ जनहित की उपेक्षा होती है, वह शासन चल नहीं सकता। राजतंत्र की आजकल खिल्ली उड़ाई जाती है। राजा निकम्मा होता है; निरंकुश होता है; यह उस प्रणाली के दोष हैं पर यह याद रखना चाहिये कि भारतीय इतिहास के राजे और सम्राट संसार में आदर्श रख चुके है। यदि मानसिंह जैसे आदर्श राजा के हाथ में शासन की बागडोर सौंप दी जाय तो, देश उन्नति करेगा। राजा मानसिंह के हाथ में पूर्ण सत्ता है, परन्तु वह मनमानी नहीं जरता। युद्ध और शान्ति दोनों अवसरों पर वह मंत्रियों और विजय जैसे न्याय परायण बुद्धिमानों की सलाह से काम करता है। उनके परामर्श का मूल्य है परन्तु राजा सैन्य संचालन में स्वयं इतना पटु है कि उसके निर्णयों की बराबरी कोई नहीं कर पाता (पृ. १७०) मानसिंह का प्रजा प्रेम भी स्तुत्य है। जो राजतंत्र इतना बदनाम है, उसी का प्रतिनिधि राजा मानसिंह प्रजा के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझता है। जब रात के अंधेरे और सन्नाटे में सब सोते हैं, राजा मानसिंह अपनी प्रजा के कष्टों का अध्ययन करने के लिये नगर के बाहर गाँव-गाँव में घूमता है। यवन के आक्रमणों से त्रस्त प्रजा को वह सान्त्वना देता है। एक झोपड़ी में पहुँच कर वह एक रुग्णा स्त्री के लिये आटा पीसता है। प्रशंसा की बात यह है कि वह वेष बदल कर घूमता है, जिसमें

लोगों से वह निर्भय होकर मिल सके। उनके कष्टों को देखकर स्वयं इतना दुखी हो जाता है कि उसके मुंह से निकल पड़ता है:—

"धिक्कार है मुझको, जो मैं तो भरे पेट सो जाऊँ और तुम लोग भूखों मरो! मैं महलों में रहूँ और तुम इस झोपड़ी में भूखे मरो!!"

उसका इस प्रकार झोपड़ी में पहुँचना, उसके प्रजा-प्रेम और प्रजा-पालन का प्रमाण है। जनता का उस पर विश्वास है। राजा-मानसिंह सम्राट अशोक के समकक्ष बैठने लायक है। स्वयं मजदूर कहते हैं—"सुना था महाराज ब्राह्मणों, पंडितों और सेठों के हैं, आज जाना कि मजूरों-किसानों के भी हैं।"

राजा मानसिंह प्रजा के धन को बड़ी मितव्ययिता से खर्च करता है। कला की सेवा के लिये वह खजाने से रुपया न लेकर स्वयं अपने व्यय से निकाल कर खर्च करता है। बैजू बावरा को पर्याप्त धन न दे सकने का कारण यह था कि युद्धों के कारण कोष रिक्त हो चुका था। साथ ही कलाकार को उचित सम्मान तथा आश्रय मिलना आवश्यक था। इसलिये राजा मानसिंह कहता है—

"मेरे चिट्ठे में कमी करके उन दोनों कलाकारों का वेतन बाँध दो। राज्य है काहे के लिये? प्रजा पालन, कला की रक्षा और बढ़ोत्तरी के ही लिये न? प्रजा और कला, दोनों के लिये हमें अपने प्राण को देने के लिये तैयार रहना चाहिये।

जहाँ तक विचारों का संबंध है, राजा मानसिंह उदार है। वह विवेक और तर्क से काम लेता है। शैव और शाक्त मत के ऊपरी वाद-विवादों के खोखलेपन को वह अच्छी तरह समझता है। उस युग में हिंदुओं में प्रचलित मतमतांतरों ने समाज को खोखला बना दिया था। समाज में विवेक के स्थान पर रूढ़ियों और अंधविश्वास ने अपना घर कर रक्खा था। राजा मानसिंह तत्कालीन राजाओं की तरह अपने पुराहितों के विचारों को ही धर्म नहीं मानता था। वह स्वयं पाखंड और अंधविश्वास

का विरोधी था। जब दो विवादी—एक शैव और दूसरा वैष्णव—लड़ते-भिड़ते राजा मानसिंह के पास पहुँचते हैं, तो वह उनकी बातों को ध्यान से अवश्य सुनता है परन्तु उसका नया तुला उत्तर सारे विरोध को शांत कर देता है—

ये बैठे-ठाले के वाक-युद्ध व्यर्थ हैं। कर्म मुख्य है। जो इससे बचना चाहते हैं, वे ही दायें-बायें की पगडंडियाँ ढूँढ़ते हैं।"

वास्तव में धर्म और शास्त्र की चर्चा, और व्यर्थ के वाद-विवाद वही लोग करते हैं, जिसके पास नष्ट करने के लिये काफी समय है। ऐसे लोग जीवन की व्यावहारिकता के अनुभव से कोसों दूर रहते हैं। जो लोग अपने कर्तव्य पालन में रत हैं, उन्हें वाद-विवाद का समय कहाँ। राजा मानसिंह की वास्तविक और व्यावहारिक सूझ प्रशंसनीय है।

मानसिंह के विचार उदार और प्रगतिशील हैं। मुसलमानों के भारत में बस जाने तक जाति-बंधन काफी मजबूत हो चुका था। मानसिंह फिर भी इन रूढ़िवादी विचारों का शिकार न था। उसने तोमर होकर, एक गँवई गाँव की गूजरी लड़की से विवाह किया। अटल और लाखी के संबंध को उसने मान्यता दी, जब कि अटल गूजर और लाखी अहीर थी और उन दोनों को समाज के विरोध के कारण काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। बोधन ने राजा का विरोध किया, जनता ने भी बुरा माना, उसकी अन्य रानियों ने लाखी का निरादर किया परन्तु मानसिंह लाखी का सदा सम्मान करता रहा। स्त्रियों के प्रति उसका व्यवहार बड़ा उदार था। कला चँदेरी के नायक राजसिंह की भेदिया बनकर आई थी। उसने ग्वालियर के किले के कई चित्र भी बनाकर रख लिये और शत्रु को पूरा समाचार दे देने का आयोजन कर लिया था। यह भेद खुल जाता है और कला पकड़ ली जाती है; फिर भी गानसिंह उसे मान-सम्मान के साथ चँदेरी भेज देता है।

मानसिंह का जीवन हर प्रकार से आदर्श है। खटकनेवाली बात केवल एक है। उसके नौ रानियां थी। नवीं रानी मृगनयनी के प्रति उसका प्रेम और अन्य रानियों की उपेक्षा—यह जरा खटकता है परन्तु उस जमाने में बहुविवाह की प्रथा शासकवर्ग में बड़े जोरों से प्रचलित थी। वास्तव में कई रानियों का होना उस युग के राजा की एक शान थी। स्वयं मृगनयनी को यह स्थिति पहले बुरी मालूम हुई। "ग्वालियर आकर मृगनयनी को मालूम हुआ। परन्तु परिपाटी थी, उसको बात असाधारण नहीं लगी और न अखरी।" प्रारम्भ में मृगनयनी को मानसिंह के प्रेम पर संदेह हुआ किन्तु मानसिंह के अनन्य प्रेम ने विजय पाई। मृगनयनी की बुद्धिमत्ता, विवेक, समय और कलाप्रेम पर मानसिंह का पूर्ण विश्वास था। क्या युद्ध और क्या शांति, प्रत्येक अवसर पर वह मृगनयनी की सलाह लेता था। मृगनयनी पर उसकी अनुरक्ति ने साथ ही साथ, कभी भी अन्य रानियों के साथ उसे दुर्व्यवहार करने के लिये बाध्य नहीं किया। सबके प्रति कर्तव्य का पालन करते हुए राजा मानसिंह ने जीवन को शांतिपूर्ण बनाये रक्खा।

अटलसिंह

अटल के चरित्र-चित्रण द्वारा उपन्यासकार ने एक ग्रामीण युवक का स्वाभाविक चित्र खींचा है। गाँव के संघर्ष-विहीन वातावरण में पलकर युवक स्वभाव से ही अल्हड़ और सीधा-साधा बन जाता है। धोखा-फरेब का उसमें नाम निशान नहीं होता। उसके हृदय में जो बात उठती है, उसे वह स्पष्ट कह देता है—छिपाने की चेष्टा कभी नहीं करता। अटल ऐसा ही युवक है। राई गाँव का वह रहने वाला है। माता-पिता की मृत्यु हो चुकी है—केवल उसकी बहन-मृगनयनी उसकी साथिन रही। पास में थोड़ी-सी खेती है। उसी से उत्पन्न अनाज और जंगली

पशुओं के शिकार से उसका जीवन निर्वाह होता है । उसे जीवन में वह आर्थिक अभाव नहीं खलता, जो शहरों में युवक-समाज को खाये जा रहा है। शांति और संतोष से अटल अपना जीवन बिताता है। शरीर से वह हृष्ट पुष्ट और स्वास्थ्य से परिपूर्ण है। शांति, संतोष और परिश्रम के बीच अटल के उभरे हुए व्यक्तित्व का नमूना देखिये—

"अटल हट्टा-कट्टा युवक था। आँखें भीग चुकी थीं। सिर के बाल लम्बे थे, इसलिए सारी आकृति में भीमता आ गई थी । कई साल के कठोर जंगली जीवन ने उसके लम्बे चेहरे की लम्बी नाक को कुछ और लम्बा कर दिया था। अपनी बहिन निन्नी को सुखपूर्वक और सुरक्षित रखने में कोई कसर नहीं लगाई ।"

प्रेम मानव-हृदय की स्वाभाविक भूख है। अटल लाखी से प्रेम करने लगता है। समाज का बंधन उस स्वाभाविक प्रेम के लिए एक अड़चन बन जाता है क्योंकि लाखी अहीर जाति की है और अटल गूजर है । जाति बंधन किसी समय इतना कठोर न था, रामायण और महाभारत में, कई प्रसंगों पर यह दिखाया गया कि मनुष्य इसका अतिक्रमण कर सकता है। गाँवों में यह आख्यान पढ़े और सुने जाते है। अटल भी उन कथाओं को सुनकर विश्वास करने लगता है कि अहीर और गूजरों मे विवाह सम्बन्ध हो सकते हैं और समाज उस सम्बन्ध को मान्यता देगा। वह यह बात लाखी से कहता है:—

"मुझको जान पड़ता है कि हम-तुम एक हो जायेंगे।"

"परन्तु जात-पाँत ?"

"पहले हुआ है। हमारी-तुम्हारी जाति में व्याह सम्बन्ध हुए हैं। पुजारी बाबा पुरान की कथाओं में सुनाते रहते हैं।"

इसके बाद ही अटल लाखी को अपनाने का दृढ़ निश्चय कर लेता है ।

सामाजिक शृंखलाओं और रुढ़िगत विचारों को ध्वंस करने वाला अग्रदूत बनकर अटल हमारे सामने आता है। उसका ख्याल था कि पुराणों के पढ़ने-सुनने वाले उसके और लाखी के प्रेम का समर्थन करेंगे। स्वयं बोधन पुजारी से उसे ऐसी ही आशा थी किन्तु उसे निराश होना पड़ा। लाखी की माँ की मृत्यु होने पर वह साहसपूर्ण कदम उठाता है और लाखी को अपने घर में आश्रय देता है। मृगनयनी के विवाह के बाद वह बोधन पुजारी को अपने और लाखी के विवाह कराने के लिये राजी कराने का प्रयत्न करता है, परन्तु बोधन इनकार कर देता है। उस समय वह स्वयं ईश्वर को साक्षी बनाकर लाखी का हाथ पकड़ लेता है:—

"अटल ने थोड़े से जल से अपने हाथ धोये और लुटिया को दोनों में ले लिया। बोला—मेरी बगल में बैठ जाओ।

अटल ने ऊपर की ओर आँखें उठाई और कहा—हे भगवान, मैं कुंआरा हूँ और लाखी कुंआरी है। मैं गंगा जी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यह जन्म भर मेरी होकर रहेगी।

उसने आँखें बंद कर लीं। हिल उठा। आँखों से आँसू टपक पड़े।

वह लाखी का पाणिग्रहण कर लेता है। विवाह संस्कार की आवश्यकता इसी लिये तो बताई जाती है कि इसके द्वारा दो व्यक्तियों के सम्बन्ध को समाज मान्यता देता है और उस सम्बन्ध को तोड़ने वाला समाज द्वारा बहिष्कृत होकर दंडित होता है। प्रकृत प्रेम अस्थायी होता है उस पर विश्वास नहीं किया जाता। अटल ने यह सिद्ध कर दिया कि सहज स्वाभाविक प्रकृय प्रेम भी स्थायी होता है चाहे वह समाज द्वारा अमान्य क्यों न हो। लाखी के प्रति उसने अंत तक प्रेम को स्थायी रक्खा। पिल्ली ने अटल को अपनी ओर आकृष्ट करने में कोई कसर नहीं रक्खी, किन्तु अटल का मन एक बार भी विचलित नहीं हुआ। लाखी पिल्ली को समाप्त कर देती है, फिर भी उसे संदेह होता है कि शायद अटल पिल्ली से प्रेम करने लगा हो। ऐसी स्थित में अटल ने

जिस प्रकार क्षोभ प्रकट किया है, वह उसके सच्चे प्रेम का द्योतक है:—

'वह स्त्री थी ! घूरे पर मँडराने वाली तितली को स्त्री कहा जाता है ? बहुत से मन्दिरों के द्वारों पर जवान स्त्रियों की जो बेहूदी मूर्तियाँ बना कर खड़ी कर दी गई हैं, वे क्या किसी देवता के हुकुम से गढ कर खड़ी की गई हैं ? मैं क्या कोई मक्खी हूँ जो मैले पर जा गिरूँगा ? मैं क्या....'

अनेक कष्टों को सहन करते हुये अटल, लाखी के प्रेम को बनाये रखता है। वह राजा मानसिंह का साला था, यदि वह चाहता तो ग्वालियर सीधे जाकर सुख का जीवन बिता सकता था परन्तु अपनी प्रेयसी लाखी के आत्मसम्मान को इस बात से धक्का पहुँचता। लाखी ग्वालियर जाने के लिये तयार नहीं होती। वह कहती है:—

"कोई यदि मुझको किसी का चेरा कहे, चाहे वह मेरी निज की ननद ही क्यों न हो, तो मैं नहीं सह सकूँगी और न यह सह सकूँगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे।"

अटल उसकी बात मान लेता है और गाँववालों द्वारा तिरस्कृत होने पर नरवरगढ़ में नटों के साथ जाकर अनेक कष्ट सहता है। राई गढ़ के घेरे में जब लाखी की मृत्यु हो जाती है, तो अटल को अपना जीवन भार बन जाता है। वह अपनी जान देने के लिए ही शत्रु दल में घुस पड़ता है और हँसते-हँसते मृत्यु का आलिंगन करता है।

अटल के व्यक्तित्व का सबसे आकर्षक पहलू वह है, जो उसके भोलेपन का दिग्दर्शन कराता है। दुनिया की चालाकी और फरेब से वह कोसों दूर है। पिल्ली जब उसका मन चुराने के लिए, जब अनेक हाव-भाव और अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन करती है, तो अटल इसे उसकी निर्लज्जता ही समझता है। पिल्ली के हृदयगत भावों को समझने में वह बिल्कुल असमर्थ है। नट लोग नरवरगढ़ से कब कूच करते हैं और साथ में अटल और लाखी

को निकाल ले जाना चाहते हैं ; तो लाखी उन्हें समाप्त कर देने की योजना बना लेती है। पिल्ली के उतरते ही वह रस्सा काट देती है। और कहती है—

"डायन ! चुड़ैल !! सुलतान की गोदी में बिठलाना चाहती थी। ले नरवर गढ़ का आधा राज्य !!"

यह सारी बातें अटल की समझ में ही नहीं आतीं। वास्तव में अटल दुनियादारी से बिल्कुल दूर था। उसकी अनुभवहीनता, उसका कारण थी। सारी बात वह तभी समझ पाता है, जब लाखी उसे स्पष्ट समझाती है।

इस भोलेपन के साथ-साथ वीरता, ने अटल के व्यक्तित्व को और भी ऊँचा उठा दिया है। शिकारी और निशानेबाज वह था ही, मृगनयनी के साथ-साथ उसकी वीरता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी उसकी वीरता का प्रमाण हमें राई घाटी के घेरे में मिलता है। राजा मानसिंह ने उसे सामन्तपद देकर, राई में एक गढ़ी बना कर, उसका क़िलेदार अटल को बना दिया। सिकन्दर की विशाल वाहिनी द्वारा घर जाने पर भी अटल ने कई दिन तक गढ़ी की रक्षा की और स्वयं जान देकर ग्वालियर की सुरक्षा में योग दिया।

बोधन

बोधन का चित्र, रुढ़िवादिता का सच्चा प्रतीक है। बोधन राई गाँव का पुजारी है। वह ब्राह्मण है। उसे अपनी शास्त्रीय ज्ञान पर गर्व है। शान्ति और संतोष पूर्ण जीवन बिताने की इच्छा और राई गाँव के टूटे हुए मंदिर के जीर्णोद्धार करने के उद्देश्य से वह वहाँ बस गया था। गाँव के जनों की उस पर अटूट श्रद्धा है। अटल और निन्नी उसका मुख्य सहारा हैं। शास्त्रों के पढ़ने से उसके विचारों में एक प्रकार की जड़ता आगई थी। वास्तव में बोधन उस युग के तथा उन कथित पंडितों का प्रतिनिधित्व करता

है, जिनमें विवेक का अभाव होता था और जो शास्त्रों में लिखी बातों को बिना तर्क-वितर्क के मान लेते हैं। उनके लिए परिवर्तन एक अपराध है। वे समय की स्थिति को नहीं पहचानते। आँखें बन्द किए हुये, वे चले जाते हैं, मार्ग में आये हुये खाई-खंदक या मोड़ों की उपेक्षा करते हैं। शास्त्रों के बल पर ही, उनकी दुहाई देकर ही बोधन अपनी शक्ति बनाये रखता है। अबोध और निरक्षर जनता उसके शासन के जुवे को गर्दन पर सहर्ष रक्खे हुये भारी बोझा ढोती है—

"राज्य के सिपाहियों की उगाही के बाद पुजारी की उगाही सहज नहीं हो गई। किसानों को अन्न के दर्शन राम-राम कर के हुए थे, इसलिए वे देने में किनर मिनर कर रहे थे। पुजारी ने कहा, 'शास्त्र का बचन कभी मत भूलो; छठवाँ भाग राजा का होता है, सो तुमने देदिया। बीसवाँ देवता का, तीसवाँ ब्राह्मण का होता है। उसके देने में आनाकानी करने से यह लोक तो बिगड़ेगा ही, परलोक से भी हाथ धो बैठोगे।"

इस प्रकार शास्त्र-सम्मत ढंग से समझा कर पुजारी बोधन अपना मतलब सिद्ध करता है। बोधन की रूढ़िवादिता उसके चरित्र का दोष है। उसी के कारण लाखी और अटल को अनेक कष्ट सहने पड़े। साथ ही यह मानना पड़ेगा कि बोधन की अंध श्रद्धा स्वार्थ विहीन थी। उसका दृष्टिकोण भले ही गलत हो, पर वह अपने मार्ग पर दृढ़ था। उसकी दृष्टि से अटल और लाखी का प्रेम अवैध था। जाति बन्धन उसको मान्य था, अपने हाथ से वह उसे कैसे तोड़ सकता था। अटल के अनुरोध पर वह स्पष्ट कह देता है:—

"मैं राज्य को छोड़ कर परदेश चला जा सकता हूँ परंतु वर्णाश्रम धर्म को लात नहीं मार सकता।"

बोधन को मालूम था कि अटल राजा मानसिंह का साला है, फिर भी वह कहता है, "मैं ब्राह्मण हूँ। राजा मेरा कुछ नहीं कर सकता। रूठ जायँगे तो इस राज्य को छोड़ कर अर कहीं चला

जाऊंगा। मैं तुम्हारी धमकी में नहीं आ सकता। शास्त्रों को मैंने यों ही नहीं पढ़ा है। जाओ कहदो, राजा से।" अटल ने उसे दान-दक्षिणा का लोभ दिया परन्तु वह अपने आदर्श से च्युत न हुआ। राजा मानसिंह स्वयं समझाकर हार गये परन्तु बोधन ने अपनी हट न छोड़ी।

बोधन की निर्भीकता प्रशंसनीय है। वह अपने आदर्श की रक्षा करने में प्राणों की परवाह नहीं करता। राजामानसिंह जब उसे अटल और लाली का विवाह कराने के लिए बाध्य करते हैं, तो वह निर्भय होकर कह देता है—

"महाराज की जय हो। धर्म के लिये यह निरीह ब्राह्मण अपना प्राण देने को तैय्यार है। दीजिये दंड।"

राजा मानसिंह उसे समझाने में असफल रहे। अन्य स्थल पर जब वह सिकंदर के लश्कर में शास्त्रार्थ करने पहुँचता है, तो वह अपनी निर्भीकता का पूरा परिचय देता है। सिकंदर उसे इस्लाम में दीक्षित होने के लिये आज्ञा देता है परन्तु वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझता है और वह यह बात स्पष्ट रूप से बादशाह से कह देता है। उसे मृत्यु दंड मिलता है। उस समय जिस वीरता, साहस और सहिष्णुता के साथ वह मृत्यु का आलिंगन करता है, वह उसको श्रद्धा और प्रशंसा के योग्य बना देती है।

जहाँ तक विचारों और ज्ञान का संबंध है, बोधन पाठक की श्रद्धा प्राप्त करने में असमर्थ है। वह मध्यकालीन ब्रह्मणों की भाँति, कट्टर विचारों का है। वह वर्णाश्रम धर्म का पूरा पक्षपाती है और इस दृष्टि से वह अपनी श्रेष्ठता पर विश्वास करता है। राजा मानसिंह से वह कहता है:—

'महाराज से मैं क्या निवेदन करूँ? इतना तो भी कहना पड़ेगा कि क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश देने के लिये नहीं बनाये गये हैं; धर्म और गौ ब्राह्मण की रक्षा के लिये बनाये गये हैं।'

विजय जङ्गम

१४वीं १५ वीं शताब्दी में शैव और वैष्णव सम्प्रदायों में काफी गहरा मतभेद था। सिद्धान्तों में मतभेद तो था ही, दोनों सम्प्रदायों के अनुयायी प्रायः वाद-विवाद में पड़ते और लड़ते-भिड़ते रहते थे। साधारण स्थिति के अनुयायी इतने विद्वान न थे कि तथ्य को समझ सकते। केवल प्रचलित विश्वासों को लेकर मौखिक और कभी-कभी शरीर से भी लड़ते-भिड़ते थे। उत्तर भारत में वैष्णवों और दक्षिण भारत में शैवों का अधिक ज़ोर था। लिङ्गायत सम्प्रदाय शैव मत की एक शाखा थी। विजय जंगम इसी लिंगायत शाखा का अनुयायी था। वह कर्नाटक का रहने वाला था और उसे ग्वालियर में राजा मानसिंह ने आश्रय दिया था। वह राजा मानसिंह का परम सखा बन बैठा और उसके साथ रहने से राजा के विचारों में बहुत उदारता आ गई। श्रम पर विश्वास, छुआछूत और वर्ण-व्यवस्था में अरुचि, यह सब विजय के सत्संग से राजा ने सीखी।

विजय के विचार बड़े प्रगतिशील हैं। ऐसा जान पड़ता है, वह बीसवीं सदी की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। भजन भाव पर उसे विश्वास नहीं और वह समझता है कि भजन अकर्मण्यता को प्रश्रय देता है। इससे जीवन की समस्या हल नहीं हो सकती। वह स्पष्ट कहता है—

"यह सब भ्रम है। जीवन में काम करना, श्रम से रोटी उपार्जन करना और शिव का नाम लेना यही गौरव है, इसी में जीवन की सार्थकता है। भीख माँग कर खाना, छल-कपट, पाखंड से अज्ञानियों की श्रद्धा का संग्रह करते रहना यही सबसे बड़ा पाप है। पूर्व जन्म ने सबके लिये काम को प्रधान कर रक्खा है। पूर्व जन्म के सब दुख, श्रम और शिव की गायत्री से कट जाते हैं।"

यह कहना अनुचित न होगा कि विजय ने धार्मिक अन्ध-विश्वासों और परम्पराओं के घने अन्धकार में ज्ञान की ज्योति जलाने की चेष्टा की। कर्म और शारीरिक श्रम के महत्व पर उसने जोर दिया। श्रमिक वर्ग की महानता और श्रेष्ठता का परिचय उसने अब से छः सौ वर्ष पहले दिया। वह स्पष्ट बताता है कि श्रमिकों का शोषण धर्म की आड़ में हो रहा है। वह श्रमिकों को सचेत करता हुआ कहता है :—

'इस पेटू का, अपनी मजदूरी और पेट काट कर भरो इस भिखमंगे का पेट। भजन से इसका यह प्रयोजन है।"

विजय केवल धर्मपरायण व्यक्ति नहीं है। वह राजा मान-सिंह के साथ लक्ष्य भेद में भाग लेता है। वह युद्धों और शिकार में राजा के साथ सहयोग करता है। कला की उपासना में भी वह पीछे नहीं है। वीणा वादन में विजय पूर्ण रूप से कुशल है। सभा और संगीत गोष्ठियों में वह अपनी कला का परिचय देता है इसी से वह राजा मानसिंह का प्रेम-पात्र और मित्र था। जिन सिद्धान्तों पर वह विश्वास करता है, उन्हीं के अनुकूल वह आच-रण भी करता है। वह स्वयं इतना परिश्रम करता है, कि जिससे उसकी जीविका चल जाय। "विजय को 'कायक'—शारीरिक श्रम में इतना विश्वास था कि अपना पसीना बिना बहाये वह किसी से कभी कुछ नहीं लेता था।" राजा मानसिंह उसकी हृदय से प्रशंसा करते हैं :—

"कितना बड़ा कलाकार और पंडित है वह ! राज्य से कुछ नहीं लेता। वीणा सुनाने के बदले में एक कौड़ी नहीं लेता। कहता है अपनी रक्षा के पल्टे में वीणा को सुना देता हूँ। परन्तु आय की कमी को शारीरिक श्रम से पूरा करता है।"

विजय वीणा वादन में पटु है। आचार्य बैजू के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती है। वाद्य यंत्रों के साथ मनुष्य के गले से निकले हुये स्वरों का माधुर्य बढ़ जाता है, फिर भी गले

के स्वरों से वाद्य यंत्र पूरी तरह होड़ नहीं ले पाता। इसी से बैजू के साथ विजय अंत तक वीणा नहीं बजा पाता। वह स्वयं शास्त्र-सम्मत संगीत परिपाटी का समर्थक है, उसमें हेर-फेर करना उसे पसंद नहीं। जब राजा मानसिंह अनुरोध करता है कि 'प्रबंध और छन्द की गायकी को जो पसारा बहुत दिनों से मिलता आ रहा है, उसको थोड़ा सा समेट लिया जावे और साज-माँजकर और भी अधिक सुंदर बना लिया जावे तो कैसा रहे ?' तो विजय इस हेर-फेर की योजना को पसन्द नहीं करता। वह कहता है, "महाराज, जो कुछ नाद-वाद पहले से चला आया है, वही दुर्गम है, उसमें घटा-बढ़ी अब कौन कर सकता है ?"

विजय के चरित्र-चित्रण में कल्पना से काम लिया गया है परन्तु उसका व्यक्तित्व ऐतिहासिक है। वह लिंगायत सम्प्रदाय की विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करता है। मानसिंह के विचारों पर उसका वही प्रभाव पड़ता है, जो अकबर पर सूफी कवि फैजी और अबुलफ़जल ने डाला। राजा मानसिंह की उदारता और परिश्रमशीलता को, विजय के सामीप्य से बहुत प्रेरणा मिली। वह राजा के दरबार का अमूल्य रत्न था।

बैजू आचार्य

संगीत शास्त्र के इतिहास में बैजू बावरा का नाम सदैव अमर रहेगा। इनका नाम बैजनाथ है और यह ऐतिहासिक व्यक्ति थे। ऐतिहासिक आधार और किंवदंतियों के अनुसार बैजू अकबर के दरबारी संगीतज्ञ तानसेन के समकालीन थे। कुछ लोगों का कहना है कि संगीत के अखाड़े में तानसेन इनसे पराजित हुये। इस उपन्यास में बैजू की कथा में ऐसी किसी भी घटना का उल्लेख नहीं हुआ है। लेखक ने 'परिचय' में कह दिया है, बैजनाथ नायक (बैजू बावरा) मानसिंह मृगनयनी के गायक थे।

बैजू चँदेरी का रहने वाला था। उसके "गले की मधुरता और बीणा पर अंगुलियों की चतुराई विख्यात हो गई थी। .....जाति का ब्राह्मण, गायन-वादन के अभ्यास बढ़ाने में उसको दिन और रात, भूख और प्यास, अवसर और कुअवसर की परवाह नहीं रहती थी।" वह आत्मसंतोषी प्रकृति का था। वहाँ के किलेदार राजासिंह से जो कुछ मिल जाता, उसी से जीवन यापन करता हुआ बैजू अपनी कला का अभ्यास करता था। एक कलाकार के लिए उसकी कुशलता की प्रशंसा बड़ी चीज है, वह इसी से संतुष्ट हो जाता है। इसी से वह चँदेरी में संतोषमय जीवन बिताता हुआ पड़ा रहता है। राजसिंह का चारण जब कहता है कि नरवर पर अधिकार होने पर तुम्हारा सम्मान उचित सम्मान होगा, तो वह कैसा उत्तर देता है—

"जो मिल जाय वही बहुत है। अपनी आत्मा के भीतर से जो कुछ पाता हूँ वह सबसे बढ़कर है।"

बैजू की चित्तवृत्तियाँ अन्तर्मुखी हैं। वह अपने आप में मस्त रहता है, दुनिया की छल-कपट की नीति वह क्या समझे। बैजू ग्वालियर जाना चाहता है। कलाकार यही चाहता है कि वह ऐसे व्यक्ति के आश्रय में रहे, जो उसकी कला को समझ सके—ग्वालियर का राजा मानसिंह अपने कला-प्रेम के लिए प्रसिद्ध था। बैजू को ऐसा ही आश्रयदाता चाहिए था। बैजू को प्रसन्न करने के लिए राजसिंह दीपावली के उत्सव और उसके सम्मानित किये जाने की बात करता है, परन्तु बैजू को संतोष कहाँ? उसे ग्वालियर जाना था। राजसिंह, ग्वालियर में अपना भेदिया भेजना चाहता था। बैजू से वह यही राय लेना चाहता है किंतु भोला-भाला कलाकार यह सब नहीं समझ पाता। उसकी शिष्या कला को भी राजसिंह, उसके साथ समझा-बुझा कर ग्वालियर भेज देता है।

• बैजू को ग्वालियर इसलिये पसंद आता है कि वहाँ उसकी कला का समुचित आदर होता है। बिदाई न लेकर वह मानसिंह का आश्रय ग्रहण करता है। यहाँ उसकी कला चमक उठती है। बैजू में प्रतिभा और मौलिकता है। उसके मौखिक संगीत में मुग्ध कर लेने की शक्ति है। तन्मयता से कलाकार का सौंदर्य और भी बढ़ जाता है। कलाकार गाते-गाते यदि आत्मविस्मृत नहीं हो जाता, तब तक वह अपनी कला का सच्चा प्रदर्शन नहीं कर पाता। बैजू में यह गुण था। उसी के कारण न केवल वह वरन् सभी संगीत सुननेवाले ब्रह्मानन्द सागर में डूब जाते हैं। राजा मानसिंह भरी सभा में उसके गुण को मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं—"आचार्य बैजनाथ, धन्य हो! कितने तन्मय हो गये थे तुम अपने रस में !! हम सब भी तल्लीन हो गये। इन्होंने तुम्हारे रस का पूरा स्वाद लेने के लिये अपनी वीणा ही रख दी.....हम सब डूब गये तुम्हारी रसधार में !! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ।" राजा मानसिंह ने सच ही कहा—"सोये तुम नहीं। हम लोगों के भीतर वाले को जगा रहे थे।" बैजू वास्तव में, मनुष्य की अंतरात्मा को जगा सकता था।

बैजू में प्रतिभा और मौलिकता है। विजय राग-रागनियों की प्रचलित परिपाटी में कोई हेर-फेर नहीं करना चाहता परन्तु बैजू परिवर्तन का समर्थक है। वह तो यहाँ तक पसंद करता है कि 'गायन की कोई नवीन, मधुर और चमत्कारपूर्ण परिपाटी निकाली जाय।' बैजू को एक ही धुन है कि संगीत की प्रचलित शैली में कुछ सुधार किया जाय, कुछ नई परिपाटियों का सृजन किया जाय। युद्ध के बादल मँडरा रहे थे पर "बैजू को युद्ध के समाचारों से कोई सरोकार न था। उसके लिए युद्ध खटमल और मच्छर के दंश के समान था। काटा, खुजलाया और पीछा छुड़ा लिया.....वह ध्रुवपद की गायकी में किसी मनोहर परिष्कार की उधेड़बुन में लगा हुआ था। यदि मैंने किसी मीठी

मंजुल परिपाटी को चला दिया तो मानो सब पुरखे बैकुंठ में पहुँच गये और मेरे लिये तो सुरपुरी के द्वार खुले ही रहेंगे।" वह कला के अभ्यास में पागल-सा हो जाता है। इसी तन्मयता के वरदान से वह कई नई शैलियाँ आविष्कृत करने में सफल होता है। राजा मानसिंह उसे नायक की पदवी प्रदान करते हैं।

भोलापन कलाकार का स्वाभाविक गुण है। बैजू छल कपट से दूर है। वह कला के रहस्य को मानसिंह पर प्रकट कर देता है। वास्तव में कला का अहित करना उसका उद्देश्य न था। वह ग्वालियर में ही रहना चाहता था। जब कला ग्वालियर किले के चित्र बनाकर चँदेरी वापस जाना चाहती है और बैजू को योजना बता देती है; तो वह केवल अनुरोध की दृष्टि से ही मानसिंह से कला का रहस्य बताता है। मानसिंह बैजू का ख्याल करके ही कला को सम्मानपूर्वक चँदेरी भेज देता है। बैजू अकेला रह जाता है और संगीत की आराधना में एकांतभाव से निमग्न रहता है।

गयासुद्दीन

तुगलक खानदान की प्रभुता नष्ट होने पर भारत में अनेक छोटे छोटे राज्य बन गये। दिल्ली के लोदियों ने बहलोल और सिकंदर ने बहुत कोशिश की कि एकबार फिर संगठित मुसलमानी साम्राज्य स्थापित हो जाय परन्तु सारे प्रयत्न व्यर्थ गये। मुसलमान सरदारों और सामन्तों पर हिन्दुस्तानी हवा का असर पड़ने लगा था। महमूद गजनवी की धार्मिक कट्टरता का उनमें अभाव होगया। उन्हें भी सौन्दर्य और विलासमय जीवन आकर्षित करने लगा। मुसलमानों में संगठन बनाये रखने के लिये उन्होंने मुल्ला मौलवियों को साथ लिया। बाहर से इस्लाम के समर्थक और भीतर से सुरासुन्दरी के उपभोग की लिप्सा में वे मस्त रहने लगे थे। जहाँ पाया उन्होंने एक छोटी सल्तनत कायम करली जिसमें

खूब मनमानी कर सकें। गयासुद्दीन के चित्र में लेखक ने ऐसे ही मुसलमान का चित्र अंकित किया है।

गयासुद्दीन मालवा के प्रसिद्ध महमूद खिलजी का पुत्र है। वह ऐसे लोगों में है जो स्वभावतः विलासी होते हैं परन्तु अपने आमोद-प्रमोद के क्षणों में एक महत्वाकांक्षा भी बनाये रखते हैं। उनमें इतनी दृढ़ इच्छा शक्ति नहीं होती कि वे अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकें और न उनमें इतना साहस और लगन होती है कि वे अपनी लक्ष्य प्राप्ति में जुटे रहें। गयासुद्दीन के पिता ने कालपी को अपने राज्य में मिला लिया था परन्तु गयास ने उसे खो दिया। उसने जितने भी प्रयत्न उसे फिर प्राप्त करने के लिये किये, उसे सफलता न मिली। नरवरगढ़ और ग्वालियर पर उसने कई बार आक्रमण किया किंतु पराजित ही हुआ। गयासुद्दीन न तो वीर था, न कुशल सैनिक।

गयासुद्दीन स्वयं विलासप्रिय था। इस्लाम में सुरा पान मना है परन्तु वह उसका उपयोग करता था। वह पीता था, खूब पीता था। सुन्दरियों की टोह में रहता था। ख्वाजा मटरू पर उसकी कृपा रहती थी, इसलिये कि वह उसकी चापलूसी करता और उसके लिये ऐश के सामान जुटाता। उसी ने ग़यास को मृगनयनी के सौन्दर्य और लाखारानी के यौवन का परिचय दिया। स्त्रियों का सहवास प्राप्त करने के लिये गयास, नटों, आभूषणों और सेना सभी का उपयोग करता था। राई गाँव के निकट नटों का डेरा उसी की प्रेरणा का परिणाम था।

सुल्तान गयासुद्दीन में धार्मिक कट्टरता का अभाव था। मुल्ला-मौलवियों को अपनाना उसकी राजनैतिक चाल थी। मुल्लाओं का साधारण मुसलमानों पर प्रभाव था। बिना उनके सहयोग के सुल्तान मुसलमानों को अपने पक्ष में नहीं ले सकता था। इसी से वह मुल्लाओं को अपने वश में रखता था पर दिल से वह उन्हें घृणा करता था। वह कहता है:—

"जहन्नुम में जायँ मुल्ला-मौलवी। मेरा बस चले तो सारे के सारे फिरके को हिंदुओं के बैकुंठ में पहुँचा दूँ, जहाँ करते रहें बहस क़यामत तक परियों और फरिश्तों से।"

साथ ही उसमें इतना साहस भी नहीं है कि वह खुले आम उन मुल्लाओं का विरोध करे। उनके फतवे से उसे भय था। जब मटरू कालिदास की शायरी की प्रशंसा करता है, तो वह कहता है—"यहाँ कोई मुल्ला मौलवी तो बैठा नहीं है, जो तुम कालिदास को क़ाफिर कहते हो। वाह! क्या शायर था! शायर नहीं शायरों का जौहर था। दुनिया के पर्दे पर ऐसा शायर नहीं हुआ।" उसमें उदारता और सहिष्णुता दोनों हैं। मुल्ला लोग मस्जिद के निर्माण में हिंदू-कला के समावेश से पूर्ण असंतुष्ट हैं किन्तु गयास की समझ में "कारीगरों ने जो कुछ पुराने ज़मानों से कारीगरी के रिवाज में सीखा है, उसी को तो पेश कर रहे हैं।" हिन्दुओं और उनकी संस्कृति से उसे कोई घृणा न थी। उनकी सेना में राजपूतों की काफ़ी संख्या थी और वह उनका आदर करता था।

गयासुद्दीन योग्य शासक था और उसे राजनीति का अच्छा ज्ञान था। मुसलमानों के संगठन के लिये वह मुल्ला मौलवियों के सहयोग को वांछनीय समझता था। उधर वह उनकी कट्टरता का विरोध भी करता था। संधि और विग्रह वह आवश्यकतानुसार करता था। इसी से वह ग्वालियर, दिल्ली, मेवाड़ और गुजरात जैसे राज्यों से घिरा होने पर भी बचा हुआ था। सभी एक दूसरे को हड़प जाने के लिये तैयार रहते थे। वह ग्वालियर पर चढ़ाई करना चाहता था, कालपी को राज्य में मिलाना चाहता था, परन्तु महमूद घबर्रा के डर से कभी भी एकायक हमला न कर सका। वह दूरदर्शी था। एक समय वह एक राज्य से ही टक्कर लेना पसन्द करता था। नीति की दृष्टि से वह ग्वालियर को केवल अधीन करना चाहता है, उस पर अधिकार करना उसका उद्देश्य

नहीं था। जब ख्वाजा मटरू उसे ग्वालियर को राज्य में मिला लेने के लिये सलाह देता है, तो वह कहता है—"तुम अहमक़ ही रहे! ग्वालियर को जीत लेने पर राजा मानसिंह को ही सूबेदारी बख्श दूँगा, मुझको मतलब मृगनयनी से है न कि ग्वालियर की बस्ती से। जिमान और बैर भँजाने के लिये राजपूत अपना सिर दे देने को तैयार रहता है।" उसका यह कथन उसकी दूरदर्शिता का परिचायक है। राजपूतों के स्वभाव को वह अच्छी तरह समझ कर उसी के अनुकूल वह नीति बरतता है।

गयासुद्दीन का अंत बड़ा दुखद है। ख्वाजा मटरू पर उसकी कृपा है। वह उसके कई अपराध क्षमा कर चुका था परन्तु उसने दग़ा की। नसीर का साथ देकर उसने ग़यास को ज़हर दिलवा दिया। वह अनेक कामनायें और अतृप्ति लेकर चल बसा। ग़यास का चरित्र वर्मा जी के शब्दों में देखियेः—

"उसका स्वभाव अधीर, उद्धत, कामुक और कपटप्रिय था। मदिरा पीने पर वह सहज स्वभाविक मानव सा हो जाता था। पीता अधिक न था परन्तु पी लेने पर उसकी मानवीयता, उपेक्षण और हास्यप्रियता तथा कामुकता बढ़ जाती थी। हिन्दुओं के साथ वह अत्याचार नहीं करता था। कट्टरता का वह मज़ाक उड़ाया करता था। शराब पीने पर—इसलिये मुल्ला वर्ग उससे रुष्ट रहता था। कामुकता के अन्धेपन में वह पुरुष और स्त्री की पहचान नहीं रखता था और न खाई खड्डों की परवाह करता था।" (पृ० ६६)

नसीरुद्दीन

नसीरुद्दीन मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन का पुत्र था। विलासप्रियता और निकम्मेपन में वह अपने पिता से बाजी मार लेगया। अयोग्यता की तो उसमें चरम सीमा थी। उसका चरित्र राजतंत्र के पतित रूप का सच्चा चित्र है। प्रजा रंजन, शासन और व्यवस्था की ओर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं है। साकी,

शराब और असंख्यक सुन्दरियों का जमघट, यही उसकी दुनिया है।

बचपन में नसीर को बड़ा संयमपूर्ण जीवन बिताना पड़ा था। बादशाह होने पर जब उसके हाथ में शक्ति आ गई और वह पूर्ण स्वतन्त्र हो गया, तो उसकी प्रवृत्तियों के प्रवाह उद्यामवेग से बहने लगा। उसके चरित्र का विकास मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुकूल हुआ। एक ओर उसे बरबस मुल्ला मौलवियों के कठोर शासन और संरक्षण में रक्खा गया। दूसरी ओर उसका पिता स्वयं इस प्रकार संयमपूर्ण जीवन नहीं बिताता था। इसलिये उसके बाल-स्वभाव में समय के प्रति विद्रोह का जमना स्वाभाविक था। वह मजबूरी से संयम के बंधन में बंधा था। समय आते ही वह उसे तोड़ देने को उत्सुक था:—

"नसीरुद्दीन पच्चीस वर्ष का जवान था, परन्तु उसका स्नेह एक ख्वाजा के ऊपर सबसे अधिक था। नसीर को मुल्लाओं से घिरवा रक्खा था। नसीर मुल्लाओं के राजकीय प्रभाव को जानता था। उसको नमाज और रोजों से इतना प्रेम नहीं था, जितना उस भविष्य का जिसकी वह बाट देख रहा था, और जिसको वह मुल्लों के और उनस प्रभावित तथा प्रेरित मुसलमान सरदारों के हाथ में देखता था।"

शक्ति, यौवन और लक्ष्मी यदि अनुभवहीन व्यक्ति के पाले पड़ जायें, तो उनका दुरुपयोग होता है। नसीरुद्दीन को जीवन का कोई अनुभव न था। लाड़-प्यार में पला था, सिर्फ कुरान की आयतें रटी थीं। सौंदर्य और उसके उपयोग का आकर्षण युवक के लिये स्वाभाविक होता है। वह पिता को जीवन का सुख लूटते हुये देखता था, तो उसका दिल भी मचल उठता था। जब उसे एक बार ग़यास की अनुपस्थिति में माँडू का शासन करने को मिलता है तो वह मटरू से कहता है—"जी चाहता है कि मैं भी कुछ दुनिया देखूँ। किताबें तो बहुत सी पढ़

लों, मगर दुनिया समझ में नहीं आ रही है।" इन शब्दों में उसकी आकाक्षाओं की झलक है।

जब शिक्षा में और वास्तविक जीवन में एक विरोध होता है, तो जीवन में कटुता आती है। एक ओर धर्मग्रन्थों द्वारा और पुस्तकों द्वारा सिखाया जाता है, मदिरा पान न करो, स्त्रियों से दूर रहो, लेकिन दूसरी ओर समाज में इनका उपयोग खुले आम होता है, तो नवजवान बड़े असमंजस में पड़ जाता है। नसीर ने कुरान में पढ़ा था—शराब पीना कुफ्र है परन्तु उसका पिता स्वयं पीता है। उसके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक था। वह मटरू से कहता है—शराब बहुत बुरी चीज कही जाती है फिर लोग क्यों पीते है ?

मटरू उसे ठीक ही समझाता है—"जान आलम, बुरी चीजें जब बादशाहों के हाथ छू लेती हैं, तब उतनी बुरी नहीं रहतीं। बंदा तो गुलाम है, कह ही क्या सकता है।"

खुदमुख्तार होने पर नसीर मटरू से कामिनी और कादम्ब की ही याचना करता है, "तब फिर एक तो यह ; पर थोड़ी सी ही, बहुत ही थोड़ी, वरना पकड़ में आ जाने का अंदेशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।"

नसीर को अपने पिता पर जरा भी श्रद्धा न होना स्वाभाविक था। एक विलासप्रिय पिता अपने पुत्र से संयम की आशा करे, यह उसकी मूर्खता है। पुत्र, पिता का अनुकरण करता है। पिता को शराब पीते देखकर नसीर के मन में पिता के प्रति अश्रद्धा हो जाती है। वह कहता है—"मगर मटरू यह सब इतनी कैद मेरे लिये और अपने लिये शराब शीरीं, लैला वगैरह वगैरह सब जायज।" उसके मन में पिता के प्रति प्रतिहिंसा की भावना पैदा हो जाती है। पिता को मार कर राज्य हड़प लेने की दबी हुई इच्छा ने उसके मन में घर कर लिया। मटरू उसे उत्तेजित करता है और समझाता है कि इतिहास शिक्षा देता है कि बाप

को मार कर कितने ही शहजादों ने तख्त हासिल किया है। जान आलम, सोना चाँदी और हुकूमत अख्तियार में हो तो चाहे जितनी परियाँ हाथ जोड़कर सामने आ खड़ी होंगी।" मटरू की यह नसीहत काम कर जाती है। नसीर कहता है— "एक आदमी के लिये तीस बरस के राज का जमाना बहुत होता। तख्त अब मुझको बुला रहा है और अब्बाजान को बहिश्त। मैंने तय कर लिया है।" मटरू के सहयोग से नसीर अपने पिता को जहर देता है। राजनैतिक दृष्टि से शक्ति प्राप्त करने के लिये इस कृत्य का औचित्य चाहे जितना हो परन्तु नैतिकता की दृष्टि से नसीर ने बुरा ही किया।

नसीर सम्राट होकर कामुकता का नग्न प्रदर्शन करता है। उसकी पाशविकता की हद हो जाती है। वह मटरू से कहता है— "मेरे पखवारे में पन्द्रह दिन होंगे। एक-एक दिन के लिये एक-एक हजार परियाँ। तब चैन लूँगा जब पूरी पन्द्रह हजार हो जायेंगी। कसम खाली है माँडू को परिस्तान बनाने की।" "नसीर अपनी प्रचण्ड भूख—स्त्रियों की भूख—कामवासना—की तृप्ति में जुट पड़ा। ख्वाजा मटरू और न जाने कितने मटरू उसकी सहायता के लिये फट पड़े।" "जहाँ उसने किसी सुंदरी युवती की खबर पाई कि दूत दौड़ाये।" दिन-रात नाच रंग और परिस्तान के बीच सुल्तान का जीवन बीतता था। मनुष्य को वह पशु समझने लगा। किसी को भी तलवार के घाट उतार देना, उसके लिये साधारण बात थी। न्याय-अन्याय का विवेक उसे न रहा। पानी में डूब कर मरना उसका स्वाभाविक अन्त हुआ।

कथोपकथन

एक मनुष्य में और एक मूर्ति में क्या अंतर है ? अंतर यह है कि एक बोलती है और दूसरी निर्वाक। यदि मनुष्य बात न करे, तो उसके हृदय का परिचय सिलना मुश्किल है।

इसलिये उसका वार्तालाप उसके जीवित रहने का मुख्य प्रमाण है। उपन्यास में पात्रों का कथोपकथन उनके जीवन का सच्चा सबूत है। एक तो पात्रों को हम बोलते और बातचीत करते देख कर, उनकी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में लीन होकर वही अनुभव कर सकते हैं, जो पात्र स्वयं अनुभव करते मालूम पड़ते है। दूसरे उपन्यासकार यदि प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक पात्र के विचारों और स्वभावों को विश्लेषण करे, तो उतनी स्वाभाविकता नहीं रह पाती। वर्मा जी अपने पात्रों के विषय में अपनी ओर से प्रायः नहीं कहते हैं। उनके स्वभाव और शील गुण आदि के बारे में हमको पात्रों के वार्तालाप से पूरी जानकारी होती है।

जब मुसलमान भारत में आकर बस गये, तो उनमें वह धार्मिक कट्टरता जाती रही, हिन्दुस्तान के हवा पानी ने उन पर असर डाला। साथ जब उनके हाथ में राज्य आ गया, तो उन्हें विलास ने आकर्षित कर लिया पर जिन मुल्ला मौलवियों के बल पर राज्य करते थे, उन्हें वे असन्तुष्ट भी न कर सकते थे। एक ओर उनमें सौंदर्य-पिपासा बढ़ रही थी, दूसरी ओर धर्म-बंधन खल रहे थे। गयासुद्दीन ऐसे मुसलमान समाज का प्रतिनिधि है। लेखक ने उसकी विचार धारा को उसके कथोपकथनों द्वारा कितनी स्वाभाविकता से व्यक्त कराया है :—

मटरू ने व्याख्या की—"जहाँपनाह, देहात में ऐसी खूबसूरती नहीं पाई जाती है·····यकीन नहीं किया, फिर सरकार उन मुल्ले मौलवियों की उलझन और दूसरे राज काज में उलझ करे।"

'जहन्नुम में जायँ मुल्ले मौलवी। मेरा बस चले, तो सारे के सारे फिरके को हिन्दुओं के बैकुंठ में पहुँचा दूँ, वहाँ करते रहें बहस, कयामत तक परियों और फिरिश्तों से·····उसका कुछ हाल सुनाओ।'

'एक गूजर है, दूसरी अहीर। दोनों शिकार खेलती हैं। तीर चलाती हैं।'

'काहे का शिकार खेलती हैं। किस चीज के बान चलाती हैं? नज़र के न? तीखी चितवनों के? तू भी मटरू शायर है।'

× × ×

'अगर शिकार नहीं मिलता तो जंगल के कन्द-मूल से पेट भरती हैं। फटे कपड़ों में पैबंद नहीं लगा पातीं, तो जंगली पेड़ों के पत्तों से तन ढक लेती हैं। हजूर ने एक बार उस काफिर शायर कालिदास की शकुंतला का जैसा जिकर सुना था वैसा ही।'

'यहाँ कोई मुल्ला मौलवी तो बैठा नहीं है जो तुम कालिदास को काफिर कहो। वाह! क्या शायर था। शायर नहीं शायरों का जौहर था। दुनिया के किसी पर्दे पर ऐसा शायर नहीं हुआ।'

इस प्रकार कथोपकथनों की कई विशेषतायें हैं। एक तो वर्मा जी ने पात्रों को कथोपकथनों द्वारा, उनके स्वभाव आदि का परिचय दिया है। दूसरे उनकी सहायता से वर्मा जी को कथा का विकास करने में बड़ी सहायता मिली है। कथा के प्रारंभ में हमें केवल निन्नी और लाखी का परिचय मिलता है। हम देखते है कि वे किस प्रकार गाँव में रहकर, शिकार खेल कर, हंसी-खुशी के दिन बिताती हैं परन्तु अब कथा का प्रवाह आगे कैसे बढ़े? बस उसी समय लेखक हमें मालवा ले जाता है और हमें मटरू तथा गयास की बातचीत में आगे की कथा का सूत्र मिल जाता है। मटरू गयास से लाखी और मृगनयनी के सौंदर्य की चर्चा करता है और गयास उन्हें पाने के लिए षडयंत्र के बीज बोना शुरू करता है। उपन्यास की कथा यहीं से आगे एक निश्चित दिशा की ओर मुड़ जाती है।

कथोपकथनों को स्वाभाविक बनाने के लिये, लेखक को दो तीन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। पहले तो कथन हमेशा एक पात्र के गुण, स्वभाव और चरित्र के अनुकूल होना चाहिये। दूसरे, कथोपकथन व्याख्यान के रूप में न होने चाहिये।

(जैसे कि कभी-कभी प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में मिलते हैं, उनके पहले यदि पात्र का नाम हटा दिया जाय, तो वे एक छोटे मोटे निबन्ध मालूम पड़ते है)। तीसरे कथोपकथन की भाषा सरल, स्वाभाविक और व्याकरण के बंधनों से शुरू होनी चाहिये। चौथे व्यंजना, हास्य और व्यंग्य आदि का प्रयोग कथोपकथनों में बड़ी जान डाल देता है। 'मृगनयनी' में आये हुए कथोपकथनों में इनमें से कुछ विशेषतायें अवश्य हैं। वर्मा जी की कला में जो पसंद आने वाली बात है, वह है, कथोपकथनों का छोटा होना। पूरे उपन्यास भर में शायद ही एक कथोपकथन ऐसा निकले जो आधे पन्ने का हो। प्रायः किसी विचार, या सिद्धांत के विश्लेषण में एक पात्र के मुंह से निकले हुए कथन से पन्ने के पन्ने भर जाते है। भाग्यवश वर्मा जी का कोई भी पात्र ऐसा नहीं है, जो उपदेशक हो, या राजनीतिज्ञ या दार्शनिक। यदि कोई स्थल ऐसा आ गया है जहाँ किसी गूढ़ विचार का समावेश हो गया, वर्मा जी ने बड़ी चतुरता से काट छाँट करके उसे छोटा बना दिया है। यदि दो पात्रों के वार्तालाप में एक का मानसिक स्तर ऊँचा और दूसरे का नीचा होता है, तो एक को ही गुत्थी सुलझाने में अपने विचार प्रकट करने पड़ते है। इससे कथोपकथन एकाँगी और असंतुलित हो जाते हैं। वर्मा जी ने इस दोष से बचने के लिए कथोपकथन प्रायः ऐसे दो पात्रों के बीच में कराये है जो समान बुद्धि के स्तर हैं, इसलिए वे एक समस्या पर समान ढंग से विचार प्रकट करते है—दोनों पर बराबर जोर पड़ने से कथोपकथन संतुलित हो गए है। उदाहरण के लिए—लाखी और निन्नी दो वयस्क और ग्रामीण बालायें है; मृगनयनी और राजा मानसिंह उच्च कोटि के दो मनस्वी और बुद्धिमान व्यक्ति हैं, गयासुद्दीन और मटरू एक ही विचारधारा के लोग है। उनके कथोपकथन इसीलिए स्वाभाविक और सुन्दर हैं। दो-एक उदाहरण देखिये:—

(लाखी)—"ऐसी सौगन्ध क्यों खाई निन्नी ?"

(निन्नी)—"क्योंकि मुझको ताव जल्दी आ जाता है, इस सौगंध के कारण अब न आयेगा।"

"मैं अपने पुरखों की सौगंध खाती हूँ, कि तुम चाहे जैसी गालियाँ मुझको देना, मारना, पीटना, पर मैं कभी बुरा न मानूंगी।"

"बस अब निबट चुका, आगे मेरी तुम्हारी लड़ाई कभी नहीं होगी। अच्छा अब हँस दो।

"हूँ ऊँ।"

"ब्याह करेकी भैया के साथ ?"

"फिर वही बात।"

निन्नी और लाखी दोनों ही ग्रामीण युवती हैं, शोख़ी और चुहल उनके स्वभाव के अनुकूल है। हास्य उनके वार्तालाप का प्राकृतिक गुण है।

× × ×

मानसिंह बोला "तुम सचमुच बहुत बड़ी हो। मुझसे बड़ी और बहुत अच्छी।"

"वाह ! वाह !"

"ठीक कहता हूँ।"

"कैसे ?"

मानसिंह उसके निकट आने को हुआ, मृगनयनी और अधिक मुस्कराई।

"और निकट आये तो मैं बहुत छोटी रह जाऊँगी।"

मानसिंह स्थिर हो गया।

"तुम संयम से प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विचार से उसको चंचल कर देता हूँ। संयम के आधार वाला प्रेम ही आगे भी टिके रहने की समर्थता रखता है।"

दोनों व्यक्तियों के स्वभाव, स्थिति और गंभीरता के अनुकूल

कथोपकथन है। एक विचार का विश्लेषण कराने में उन दोनों का भाग समान है।

भाषा के सौन्दर्य-प्रवाह, मुहावरेदारी, व्यंजना आदि की दृष्टि से मुसलमान पात्रों के कथोपकथन ज्यादा अच्छे हैं। देखिये:—

(नसीर)—'सख्ती अभी क्या कम है ? मर जाने को जी चाहता है। मगर खैर, तुम ठीक कहते हो। यही तै रहा। तो फिर अब सच-सच बतलाओ कि बुरी कही जाने वाली उस चीज में कुछ मजा भी है या वाकई बुरी है।'

(मटरू)—'जान आलम, अगर उसमें मज़ा न होता, तो बादशाहों के मुंह ही क्यों लगती ?

'तब फिर एक तो यह। पर थोड़ी सी ही, बहुत ही थोड़ी, वरना पकड़ में आ जाने का अन्देशा है। और दूसरी—तुम खुद समझ लो।'

'कुछ भी मुश्किल नहीं, जान आलम।'

मृगनयनी में ऐतिहासिक तत्व का समावेश

प्राचीन भारतीय साहित्य में, इतिहास एक आख्यान के रूप में माना गया है। राजाओं की कहानियाँ और उनके युद्धों का वर्णन एक मनोरंजन का साधन समझा जाता था। इसलिये इतिहास, साहित्य का अंग था। साहित्य में जिस प्रकार अतिशयोक्ति और अलंकारों का प्रयोग होता है और जिस प्रकार उसमें कल्पना का पुट दिया जाता है, उससे तथ्य छिप जाता है। पाठक का ध्यान सत्य की ओर न जाकर, केवल वर्णनों में उलझा रहता है। ऐतिहासिक आख्यान इसलिये लिखे जाते थे, कि उसमें वर्णित घटनायें और पात्र वास्तविक रूप से सत्य थे, इसलिये कथा स्वाभाविक और अधिक प्रभावोत्पादक हो जाती थी। 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' को लेकर सिंहासन बत्तीसी या भोज

को लेकर जैसी कथायें लिखी गई, उनका उद्देश्य, केवल मनोरंजन था परन्तु उनका नायक ऐतिहासिक व्यक्ति था, इसलिये कहानियाँ पढ़नेवालों को प्रभावोत्पादक और सत्य जान पड़ती थीं। अँगरेजी में सर वाल्टर स्काट ने अपने उपन्यासों में ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग इसी दृष्टिकोण से किया था।

भौतिक विज्ञान की उन्नति १८वीं और १९वीं शताब्दी में हुई। विज्ञान की अनेक शाखाओं का विकास हुआ और उससे मानव जाति को आविष्कारों और खोजों द्वारा अनेक लाभ हुये। सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि एक वैज्ञानिक पद्धति का जन्म हुआ जो कार्य कारण के संबंध पर आधारित है। इस वैज्ञानिक शैली को ज्ञान की समस्त शाखाओं—शास्त्रों ने अपना लिया। अर्थ शास्त्र, दर्शन शास्त्र, राजनीति शास्त्र, तथा अन्य सभी शास्त्रों ने वैज्ञानिक शैली को अपना लिया यहाँ तक कि इतिहास शास्त्र ने भी अपनी स्वतंत्र सत्ता, इसी शैली को, अपनाकर प्राप्त की। अर्थात् इतिहास जो अभी तक साहित्य का अंग था, अब अलग एक विज्ञान बन बैठा। इतिहास अब कल्पना और अतिशयोक्ति के आवरण को चीर कर शुद्ध और स्पष्ट तथ्य का दर्शन कराता है—वह तथ्य चाहे जितना कटु हो।

वर्तमान शताब्दी में इतिहास की इस वैज्ञानिक स्थिति (जिसके कारण इतिहास एक बड़ा शुष्क विषय बन गया) के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया का आरम्भ हुआ। इतिहासकारों का ध्यान फिर गिबन (Decline and Fall of Roman Empire का लेखक) की उस रोचक शैली की ओर जाने लगा है जिसमें साहित्यिक लालित्य है। उनका कहना है कि इतिहास और साहित्य का चोली-दामन का साथ है। साहित्य से अलग होकर इतिहास की दुर्दशा हो जायेगी। शुद्ध सत्य और तथ्य की रक्षा करते हुये इतिहास, साहित्यिक शैली में ही लिखा जाय तो अच्छा होगा। एक मराठी लेखक घाटे ने इस संबंध में अपना तर्क देते हुये

कहा है कि कितना अच्छा हो, यदि श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी जैसे उपन्यास लेखक और श्री द्विजेन्द्रलालराय जैसे नाटककार, इतिहास लिखें। उनकी शैली का आश्रय पाकर इतिहास मुखरित हो उठेगा। संक्षेप में, इतिहास और साहित्य का समन्वय होना चाहिये। मृगनयनी के लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा का दृष्टिकोण इसी प्रकार का है। उन्होंने उपन्यास की कथा-सामग्री इतिहास से ली है और उन्होंने साहित्यिक शैली द्वारा उसे बड़े लालित्यपूर्ण ढंग से पाठकों के सामने रक्खा है।

'मृगनयनी' का 'परिचय' पढ़ने पर ही पता चल जाता है। कि लेखक को इतिहास से कितना प्रेम है। उसने आख्यान चुनते समय केवल इतिहास की पुस्तक का आश्रय नहीं लिया, वरन् उसने स्वयं भ्रमण किया है। सामग्री के संकलन में उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है :—

"१९४९ के अंत में ग्वालियर की एक सम्मानित पाठिका ने मुझसे मृगनयनी और मानसिंह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया.....मैंने उस कथानक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन. अवसर पाते ही, आरम्भ कर दिया। जिन स्थानों का संबंध उपन्यास की मुख्य कथा से है, उसका भ्रमण भी किया।"

लेखक ने ग्वालियर में घूम-घूमकर गूजरों से बातें कीं, प्रचलित किंवदंतियों को इकट्ठा किया। गाइड से भी उसने बहुत-सी सामग्री प्राप्त की। इसके अतिरिक्त वह कहता है —"कथावस्तु के संग्रह में महामान्या महारानी साहब ग्वालियर, मध्यभारत के मंत्रिमंडल और ग्वालियर के पुरातत्व विभाग ने मेरी बहुत सहायता की है, मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ। ग्वालियर पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर डाक्टर पाटिल का विशेषतः आभारी हूँ जिनके सौजन्य से मुझको वे चित्र मिले जो इस उपन्यास में छापे गये हैं।"

स्पष्ट पता चलता है कि कथा सामग्री के इकट्ठा करने में लेखक ने परिश्रम तो किया ही है साथ ही उसने 'तथ्य' की शोध और छानबीन भी अच्छी तरह की है। इस दृष्टि से वर्मा जी एक उच्चकोटि के इतिहासकार हैं। उपन्यासकार होने के नाते, उन्होंने कुछ थोड़ी-सी तोड़-मरोड़ भी की है परन्तु ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न किया है।

इतिहास को वैज्ञानिक रूप देने के साथ-साथ, इतिहासकारों ने एक ओर और ध्यान दिया। अभी तक इतिहास केवल राजा महाराजाओं का जीवन-चरित्र-मात्र समझा जाता था। इसलिये इतिहास में केवल युद्ध और संधि की घटनाओं का बाहुल्य होता था। धीरे-धीरे वर्तमान इतिहासकारों ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार का इतिहास सच्चा इतिहास नहीं कहला सकता क्योंकि एक व्यक्ति अपने समय का पूर्ण प्रतिनिधि नहीं हो सकता। अर्थात् उदाहरण के लिए केवल हर्ष का जीवनचरित्र पढ़ लेने के बाद तत्कालीन जन-जीवन का पता नहीं चल सकता। इतिहास केवल राजनैतिक घटनाओं का ही नहीं, वरन् सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी घटनाओं का विश्लेषण करता है। प्रचीन काल में जनतंत्र इतना प्रिय न था। राजतंत्र की प्रधानता होने के कारण मध्ययुग का इतिहास राजाओं की ओर से उदासीन तो नहीं हो सकता परन्तु जनता के जीवन का अधिक से अधिक सच्चा चित्र उसे प्रस्तुत करना ही पड़ेगा। वर्मा जी ने इतिहास विज्ञान के इस तत्व का समावेश भी अपने उपन्यास में किया है। 'मृगनयनी' केवल राजा मानसिंह की प्रणयकथा नहीं है। प्रेम और युद्ध के चित्रों के साथ-साथ हमें, तत्कालीन समाज, साहित्य और कला के दर्शन मिलते हैं।

पहले उस युग की राजनैतिक दशा को लीजिये। लेखक ने स्वयं 'परिचय' में लिखा है:—

"पन्द्रहवीं शताब्दि का अंत और सोलहवीं का प्रारम्भ राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से भारतीय इतिहास का कराल, कठोर, और काला युग कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। उत्तर में सिकंदर लोदी..... राजस्थान में राणाकुम्भा.....गुजरात में महमूद बघर्रा..... मालवा में गयासुद्दीन खिलजी, दक्षिण में बहमनी सल्तनत और विजयनगर राज्य के युद्ध.....जौनपुर, बिहार और बंगाल में पठान सरदारों की निरंतर नोच खसोट और इन सबके बीच में ग्वालियर।"

यह राजनैतिक भारत का ढाँचा है। देश में एक दृढ़ और सुव्यवस्थित शासन का अभाव था। उसी के अनुरूप लेखक ने चित्र उपस्थित किया है। सिकंदर लोदी, गयासुद्दीन, महमूद बघर्रा और मानसिंह सभी का सम्बन्ध केवल युद्ध द्वारा हुआ है। इसके अतिरिक्त उनका पारस्परिक सम्बंध किसी दूसरे ढंग से न हो सकता था—उपन्यास में भी नहीं हुआ है। घटनायें यदि सूत्र में नहीं बँध सकीं तो उसका कारण उस युग में घटित होनेवाली राजनैतिक घटनायें इसका कारण हैं।

उस काल में युद्धों की प्रधानता थी। देश के कुछ भाग ऐसे थे, जो कई राज्यों की सीमा पर पड़ते थे। वहाँ के निवासियों की दुर्दशा का अन्दाजा करना कठिन है। साल में कई बार उन स्थानों पर कई राजाओं या सुल्तानों का घेरा होता और वहाँ विनाश का नंगा नाच देखने को मिलता था। सारा प्रदेश उजड़ जाता था, फिर बसता था और फिर उजड़ जाता था। देखिए—

गाँव मिटा दिये, खेती उजाड़ दी, ग्वालियर नगर को वीरान कर दिया.....। अंत में कुओं में जानवरों की सड़ी गली लाशों को डालकर, मानसिंह और उसके तोमर भाई बंदों को मन ही मन गालियाँ देता हुआ, सिकंदर.....चला गया।"

"आक्रमणकारियों के चले जाने के बाद इधर उधर बचे खुचे

तितर-बितर छिपे-लुके ग्रामीण अपने निवास स्थानों के लिए निकल पड़े। आदि।"

तत्कालीन दुर्दान्त आक्रमणकारियों के कारनामों का यह सच्चा चित्र है।

अब भारतीय संस्कृति के चित्र लीजिए, जिनमें ऐतिहासिक सत्य जाज्वल्यमान है। हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ होने लगे थे। १२ वीं शताब्दी में, कुतुबुद्दीन ऐबक ने मुसलमानी राज्य की नींव डाली। उस समय से मुसलमान यहाँ सामूहिक रूप से बसने लगे थे। हिन्दुओं के सम्पर्क से, यहाँ की जलवायु और ऐश्वर्य ने उनकी प्रवृत्ति में बहुत बड़ा अन्तर पैदा कर दिया। अब अरब का मुसलमान भारतीय बन बैठा। मुल्ला और मौलवी समय समय पर चेतावनी देते थे कि इस्लामी संस्कृति भारतीय संस्कृति में विलीन न हो जाय, परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ। वर्मा जी ने इस सत्य का सुन्दर विश्लेषण किया है:—

"स्वर्णसंचय की कामना, मारकाट की आकांक्षा, स्त्रियों के अपहरण की वासना, राज्य स्थापित करने के लोभ.....और मजहब के विस्तार के मोह को लेकर पठान और तुर्क आक्रमक भारत में घुसे थे। इन सबका सामूहिक नाम था बहिश्त।.....उस बहिश्त की प्राप्ति ने सुल्तानों को और उसके सरदारों तथा सिपाहियों को निर्बल और निकम्मा बना दिया;.....मुल्ले और मौलवी लगातार चेतावनी देते थे.....। सुल्तान न सुनता तो सरदारों को, सरदार न सुनते तो सिपाहियों को ये मुल्ले मौलवी धर्मयुद्ध जिहाद के लिये भड़काया करते थे। षडयंत्रों में भाग लेते और जब तक कुछ कर न गुजरते तब तक दम न मारते।"

मुल्लाओं को छोड़कर शेष मुस्लिम जनता में धर्म का पहले वाला जोश नहीं रह गया था। खास तौर से मुसलमान सुल्तानों की मनोवृत्ति बिल्कुल बदल गई थी। चूंकि उनका

राज्य जम चुका था, इसलिए धर्म का अस्त्र जिसके सहारे वे सेना को संगठित रखते थे अब काम का नहीं रहा। साथ ही वे मुल्ला मौलवियों को इसीलिए अपने साथ रखते थे कि युद्ध के अवसर पर उन्हें वे धर्म के नाम पर साथी बना लेते थे परन्तु मन ही मन उनसे घृणा भी करते थे। मालवा का नासिरुद्दीन ऐसा ही मुसलमान शासक था। "हिन्दुओं के साथ वह अत्याचार नहीं करता था। कट्टरता का वह मजाक उड़ाया करता था..... शराब पीने..... .....इसीलिये मुल्लावर्ग उससे रुष्ट रहता था।" एकांत में वह मुल्लाओं को गालियाँ देता था, वह हिन्दू संस्कृति और साहित्य की कद्र करता था परन्तु खुले आम अपना विरोध नहीं प्रकट करता था। (पृष्ठ ६७ और ६८)

मुसलमान शासकों के हाथ में सत्ता आई। धन-धान्य की कमी न थी। वैभव का मद मनुष्य की अक्ल पर पर्दा डाल देता है। मुसलमानों में भी विलासप्रियता आ गई। जो मुसलमान धर्म अपनी सादगी के लिए प्रसिद्ध है, उसी के अनुयायियों का यह हाल था।—"निज़ीकत्त की बारहदरी में खिड़की के पास तख्त पर रंग बिरंगे गुलगुले रेशमी मसनद और तकियों में डूबा हुआ सा गयासुद्दीन बैठा था। खवासिनें रत्नजटित सोने की सुराही और कटोरे लिये खड़ी थीं। नीचे उसका मुंहलगा ख्वाजा मटरू बैठा था....।" गयास के पुत्र नसीर ने विलासिता की हद कर दी। उसके हरम में १५ हजार परियाँ थीं। नाच-कूद, हास-विलास और व्यभिचार उसका जीवन था। धार्मिकता का इस प्रकार के शासकों में नाम निशान भी नहीं रह गया। राज्यप्राप्ति के लिये पुत्र पिता का और भाई-भाई का खून बहाने में न हिचकता था। इस्लाम में 'बिरादराने मिल्लत' की भावना जो उनकी संगठन शक्ति का आधार थी, अब लुप्त होने लगी थी। पारस्परिक फूट ने मुसलमानों में ईर्ष्या-द्वेष का बीज बो दिया। गयासुद्दीन को अपने सामने महमूद बघर्रा को सुल्तान कहा जाना बड़ा बुरा

लगा। वह उसे हब्शी समझता था। शासक वर्ग की यह दशा थी।

मुसलमानों का सम्पर्क हिंदुओं से हुआ। उनकी संस्कृति और यहाँ की जलवायु ने उनकी मनोवृत्ति को बदल दिया। निष्ठुर हृदय और लड़ाका मुसलमान अब कला प्रेमी बन बैठा—

"परन्तु गुजरात के महान प्राकृतिक सौन्दर्य का उसके पाषाण हृदय पर भी प्रभाव पड़ा। हरेभरे विशाल वन, लहलहाते हुये खेत, लहराती हुई नदियाँ, मधुर बोली और मृदुल नारी। उसने अहमदाबाद में एक बड़ी मस्जिद और मनोहर महल बनवाये। चौड़ी तरंगिणी साबरमती के किनारे असवल को अहमदाबाद में परिवर्तित और परिवर्धित कर दिया और मस्जिद के रूप में गुजरात की हरियाली, सुन्दरता, चमक-दमक मधुरता और मृदुलता साकार कर दी। उसका हृदय पिघलकर जितना सीधा रह गया था, उतनी सिधाई-सादगी मसजिद के मुहानों और पार्श्वों में साकार हो गई और गुजरात का प्राकृतिक, विभूतिमय, चमत्कारपूर्ण सौंदर्य अनजाने ही मसजिद के अनुपात बेलबूटों और पच्चीकारी में मूर्त हो गया था।"

स्पष्ट है कि मुसलमानों का भारतीयकरण आरम्भ हो गया था और वे यहाँ की संस्कृति और कला में योग भी देने लगे थे। जौनपुर के सुल्तान हुसेनशाह ने संगीत को 'हुसेनी कान्हणा' जैसी चीज दी। इसी तरह अन्य नगरों में मुसलमान शासकों ने विशाल भवन, मस्जिदें और मकबरे बनवाये। इन सब कृतियों में हिंदू-मुस्लिम-संस्कृति का गंगाजमुनी रंग देखने को मिलता है। माँडू में बनती हुई मस्जिद में कारीगरों ने बरबस ही हिंदू-कला का समावेश कर दिया। मूर्ख मौलवी इस पर आपत्ति करने लगे—

"सदर दरवाजे की गोख के लिये झरोखे, उसके ऊपर कंगूरे मंदिरों के जैसे रच डाले हैं। कंगूरों के साधने के लिये मोर और घोड़ों के सिर वाले पत्थर बनाये हैं। उन्होंने इन सबों को संजो डालने के लिए कल

का दिन रक्खा है। यह सब मुगल की सादगी और नक्शे नमूने के खिलाफ है। मस्जिद के देखनेवाले तुन्दी और बुलन्दी की जगह इस सिंगार और सजावट को देखकर गलतफहमी में पड़ जायँगे कि यह मस्जिद है या मन्दिर।"

हिंदू कला की मुख्य विशेषता है आलंकारिकता और मुस्लिम—कला की विशेषता। मुसलमान इमारत बनवाते थे और हिंदू कारीगर बनाते थे। अतः दोनों की रुचियों का सम्मिश्रण होना बड़ा आवश्यक था। इस तथ्य का विश्लेषण गयास करता हुआ कहता है—

—"कारीगरों ने जो कुछ पुराने जमाने से कारीगरी के रिवाज में सीखा है, उसी को तो पेश कर रहे हैं।·····अपने मन के सलोनेपन के तकाजे से कैसे लड़ जायँ वे गरीब। आप समझे ?"

वास्तव में दोनों संस्कृतियों का मेल होना अनिवार्य था।

परोक्ष रूप से दो संस्कृतियों का सम्बन्ध हो रहा था परन्तु मुसलमानों की धर्मान्धता का अभी अन्त न हुआ था। हिन्दुओं को मुसलमान बनाना अभी उसी तरह जारी था। अपना धर्म न छोड़ने पर उनका बध करना साधारण बात थी। बांधन की हत्या की घटना इसका प्रमाण है। हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदायों के सम्पर्क से सूफी मजहब की उन्नति हुई। बहुत से मुसलमान इस धर्म को मानने लगे थे। यह धर्म 'प्रेम' और 'सहिष्णुता' के आधार पर स्थापित हुआ था। कट्टर मुसलमान इस धर्म के अनुयायियों का भी खून बहाने में न हिचकते थे।

अब हिन्दुओं की बात लीजिए। वर्णाश्रम धर्म का असली मर्म हिन्दू लोग भूल चुके थे, और उसके स्थान पर रूढ़िवादिता के फंदे में फँस चुके थे। जाति बंधन काफी जकड़ चुका था। समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव हद से अधिक बढ़ गया था। सामाजिक कार्यों में उनकी स्वीकृति आवश्यक समझी जाती थी। यह ब्राह्मण ही जाति बंधन की शृंखला को मजबूत बनाये हुए थे।

उनकी शक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि राजा भी उन्हें दबा न सकते थे। लाखी और अटल की कथा इसका प्रमाण है। अटल, लाखी को अपनाने के लिये बोधन की स्वीकृति चाहता है परन्तु बोधन तैयार नहीं होता। वह स्पष्ट कहता है—"मैं राज्य को छोड़ कर चला जा सकता हूँ, परन्तु वर्णाश्रम धर्म को लात नहीं मार सकता।" यहाँ तक कि वह, यह जानते हुए भी कि अटल राजा मानसिंह का साला है और वह (बोधन) स्वयं उसी के राज्य में है, इस सम्बन्ध को मानने से इनकार कर देता है। जब राजा मानसिंह के कहने पर भी वह कहता रहता है—"महराज, क्षमा करें हिन्दू मात्र की आँख ब्राह्मण है। वह न देखे तो सब अन्धे हैं।" "सच्चा ब्राह्मण और प्राचीन काल के शास्त्र-पुराण अटल हैं और रहेंगे।" शास्त्र तो महाराज शास्त्र ही है। प्राण चाहे चले जायँ परन्तु शास्त्र की बात नहीं जा सकती।"

अन्य जातियों की दशा हीन थी। स्वयं क्षत्रिय भी ब्राह्मणों के कथनानुसार चलते थे। ब्राह्मणों को ही विचार करने का और न्याय करने का अधिकार था। बोधन राजा मानसिंह के सामने यह कहने में नहीं हिचकता—"इतना तो भी कहना पड़ेगा कि क्षत्रिय ब्राह्मण को उपदेश देने के लिये नहीं बनाये गए है। धर्म, गौ, ब्राह्मण की रक्षा के लिये बनाये गए हैं।" उसका विश्वास है कि "आर्यावर्त वर्णाश्रम धर्म को स्थिर रखने से ही बच सकता है। अन्यथा, नहीं।" ब्राह्मण समाज का प्रतिनिधि बोधन कितना रूढ़िवादी था। ब्राह्मणों में विवेक की प्रधानता न थी—वे केवल शास्त्रों में विश्वास करते थे। समयानुकूल—देश और काल की परिस्थिति के अनुसार वे सामाजिक नियमों में कोई भी हेर-फेर करना अनुचित समझते थे। कोरा शास्त्रार्थ करना और उसके द्वारा रूढ़िगत धर्म का औचित्य बताना ही ब्राह्मणों का काम था।

इसी काल से हिन्दुओं में साम्प्रदायिक भेद-भाव बड़े जोरों से आरम्भ हुआ। शैव और वैष्णव सम्प्रदाय आपस में लड़ते

थे। उनके अनुयायी धर्म का मर्म समझने में असमर्थ थे। ज़रा-ज़रा सी बातों में वाद-विवाद होता था और मार पीट की नौबत आ जाती थी। (पृष्ठ ३५—३६) दूसरी ओर हिन्दू धर्म के अन्तर्गत लिङ्गायत सम्प्रदाय भी था, जो आज कल के साम्यवाद के वृक्ष का बीज मालूम पड़ता है। वर्ण भेद का तिरस्कार इसके अनुयायी करते थे। वाद-विवाद की अपेक्षा 'श्रम' पर जोर दिया जाता था। उनका एक मात्र शास्त्र वासवपुराण है। उनके यहाँ सदाचार और मादक वस्तुओं के निषेध पर ही जोर देते थे। विजय जंगम इस सम्प्रदाय का प्रतिनिधि था। इस प्रकार हिन्दू समाज अनेक सम्प्रदायों में विभक्त था।

ऐतिहासिक दृष्टि से एक बात बड़े मार्के की है। शोध कार्य के लिये उसका ध्यान रखना बड़ा आवश्यक है। हर्ष की बात है कि वर्मा जी ने ऐतिहासिक सत्य के निर्धारण में उसका हमेशा ध्यान रक्खा है। हम पहले कह चुके हैं कि प्राचीन काल म इतिहास, साहित्य का अंग था, अतः कल्पना का पुट उसमें होता ही था। साथ ही इतिहास आज की तरह न लिखा जाता था। राज दरबारों में प्रायः चारण और भाट होते थे। मुसलमान शासकों के यहाँ तवारीख़ लिखने वाले होते थे। यह लोग अपने आश्रयदाताओं की जीवन कथा लिखते थे स्पष्ट है कि उसमें निष्पक्षता का अभाव होगा ही। यही कारण है कि राजा या बादशाह हारने पर भी अपने दरबारी चारणों द्वारा 'विजय' अंकित करा लेते थे। वर्तमान काल में इतिहास की पुनर्रचना में सत्य को खोज निकालने में यह बात बड़ी कठिनाई उपस्थित करती है। वर्मा जी ने इस बात पर बार-बार प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिये "सिकंदर ग्वालियर पर पाँच बार वेग के साथ आया। पाँचों बार मानसिंह के सामने से उसे लौट जाना पड़ा। उसके दरबारी इतिहास लेखकों—अखबार नवीसों ने लिखा है कि मानसिंह ने प्रत्यक बार सोना चाँदी देने का वादा—सोना चाँदी नहीं—देकर

टाला।" सत्य को इसी प्रकार तोड़मरोड़ कर लिखा जाता था। इसी प्रकार गयासुद्दीन नरवर को जीत नहीं पाया। परन्तु उसने तवारीख में यही लिखवाया कि उसने मानसिंह को पराजित किया। बादशाह लोग इस प्रकार झूठी बातें लिखा लिया करते थे। इतिहास के विद्यार्थी को इन सब बातों की छानबीन करना चाहिये।

वर्मा जी उपन्यासकार हैं। कल्पना से काम लेने की उन्हें छूट है परन्तु उन्होंने ऐतिहासिक सत्य को सदैव ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। साहित्य और इतिहास विज्ञान का समन्वय करने का उनका प्रयत्न स्तुत्य है।

भाषा-शैली की आलोचना

साहित्य की रोचकता और प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ लेखक की शैली पर निर्भर करती है। प्रत्येक लेखक की शैली की एक अपनी विशेषता होती है, साथ ही साथ शैली का रूपान्तर विषय के अनुकूल हो ही जाता है। वर्माजी की शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे हर बात नपी-तुली भाषा में लिखते हैं, व्यर्थ की तूल नहीं बढ़ाते। उनकी भाषा में एक प्रकार की रुक्षता है, प्रसाद की तरह सरस नहीं। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग, स्थानीय शब्दों के साथ हुआ है। भाषा व्यावहारिक है शुद्ध साहित्यिक नहीं। प्रेमचंद की अपेक्षा उनकी भाषा कठिन है पर साथ ही बोधगम्य भी है। यह तो उनकी शैली का स्थिर रूप है, परन्तु यह समझना भूल होगी कि उनकी शैली में जड़ता है। पात्र और काल के अनुसार उनका शैली बदल जाती है। यों तो वे तत्सम शब्दों के प्रयोग करते हैं परन्तु जहाँ मुसलमान पात्रों के मुंह से कुछ कहलाना पड़ा है, वहाँ उन्होंने अरबी फारसी के चालतू शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। 'मृगनयनी' में गयासुद्दीन और नासिरुद्दीन के द्वारा उर्दू-भाषा में कथोपकथन कराये गये हैं। इसी तरह ग्रामवासियों की भाषा में सरलता और

सादगी है। उनकी भाषा की यह परिवर्तनशीलता उनकी शैली का प्राण है।

पूरी मृगनयनी पढ़ जाइये, कहीं भी बड़े लम्बे पैराग्राफ नहीं मिलेंगे। वाक्य भी छोटे होते हैं। वर्मा जी केवल आवश्यक बात लिखकर थोड़े में पैराग्राफ समाप्त कर देने में पटु है। पाठक को व्यर्थ उलझना नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए एक पैराग्राफ काफी होगाः—

"एक घड़ी पीछे निन्नी और लाखी आ गई। दोनों एक एक सुअर को टाँगे थीं। दोनों छोटे थे, निन्नी वाला कुछ बड़ा था। कमान और तरकस कंधों पर डाले शिकार के खून से भीगी हुई नटों के पास आ खड़ी हुईं। वे सब के सब वाड़े को खोल कर बाहर आ गये। पोटा आतङ्कित हुआ और अधेड़िन भी कुछ डिग गई। पिल्ली ने उनके रूप में साकार भीमता देखी।"

चूँकि वर्मा जी मतलब की बातें कहते हैं, व्यर्थ की नहीं, इस लिये शब्दों के प्रयोग में मितव्ययिता का गुण आगया है। पाठक का मन ऊबता नहीं क्योंकि वर्णनों की भरमार नहीं है। पात्रों के सम्बंध में वे ज्यादा कहते नहीं, पाठक को उनके बारे में उनके कार्यों और कथोपकथनों से पता चल जाता है। रही प्रकृति वर्णनों या शिकार वर्णनों की बात जिसमें वर्मा जी की विशेष रुचि है, वहाँ भी वर्मा जी नपे तुले वाक्यों से काम लेते हैं। उनके वर्णनों से उनकी पर्यवेक्षण शक्ति का पता चलता है। साधारण से साधारण बात उनकी नजरों से बच नहीं पाती। वर्णनों की कायरता और अंग अंग पर प्रकाश पड़ने से, के शब्दचित्र-से जान पड़ते हैं, देखियेः—

"जंगल में दोनों धीरे धीरे आहट लेती हुई बढ़ रही थीं। लू के झकोरों से भूमि के बारीक कंकड़ और बिछे हुये सूखे पत्ते उड़ उड़ कर निन्नी के तपे हुये गोरे और लाखी के साँवले गालों पर पड़ पड़ जा रहे थे। उन दोनों ने ओढ़नी को सिर से लपेट रक्खा था। घुटनों तक मोटे लहँगे

का कच्छा उरोज कंचुकी से ढके हुये, पीठ से लगे हुये पेट उघाड़े। गले में भृङ्गी और कांच के छोटे बड़े दानों की माला। कलाहियों पर कांच की दो-दो मोटी चूड़ियाँ। पैरों में कांसे या पीतल तक का कड़ा नहीं। शरीर का पसीना पिंडलियों की धूल पर मोटी-पतली रेखायें बनाता हुआ जा रहा था। लू से उनको ठंडक मिल रही थी। निन्नी की बड़ी-बड़ी और लाखी की कुछ छोटी काली-कजरारी आँखें घने पेड़ों के पीछे ध्यान के साथ कुछ टटोल रही थीं। सिर और कंधे झुके हुए मानो उछल कर किसी पर टूटने वाली हो।"

पूरा वर्णन पढ़ने पर लेखक के अनुभव का पता चलता है। वह ग्रामबालाओं के रहन सहन, वेषभूषा और शिकारी जीवन की पूरी जानकारी रखता है। परिश्रम के कारण बहते पसीने की धूल भरी टांगों पर बनी हुई धाराओं की ओर जाने से उसकी दृष्टि नहीं चूकती। निन्नो और लाखी के वेष-वर्णन, छोटे छोटे और अधूरे वाक्यों द्वारा जिनमें 'क्रिया' का प्रयोग तक नहीं हुआ, कितना सुन्दर है। व्याकरण दोष यहाँ पर एक गुण बन गया है। पाठक यहाँ भाषा की ओर ध्यान नहीं देता वरन् उन आभरणों और वस्त्रों की ओर जिनका लेखक जिक्र करता है। निन्नी और लाखी का वह वेष आँखों के सामने आ जाता है। यथातथ्य वर्णनों में नपी तुली भाषा का प्रयोग जान डाल देता है। वर्मा जी ने व्याकरण की ओर ध्यान नहीं दिया है:—

"राजा मानसिंह युवावस्था के आगे जा चुका था। काली बड़ी आँखें, भरी भौंह, सीधी-लम्बी नाक, चेहरा भरा हुआ कुछ लम्बा। टोड़ी दृढ़, होठ सहज मुस्कान वाले। सारा शरीर जैसे अनवरत-व्यायाम से तपाया और कसा गया हो। कद लम्बा और छाती चौड़ी। घनी नोकदार मूछें।"

दृश्य के अनुकूल चित्र खींचते समय वर्मा जी शब्दों को इस प्रकार प्रयोग करते हैं कि वर्णन में एक मिठास आन पड़ती है।

एक व्यक्ति मदिरा नशे में मस्त है, हास विलास के सारे साधन मौजूद हैं, उसका चित्र देखिये:—

"निजी कक्ष की बारहदरी में खिड़की के पास तख्त पर रंग बिरंगे गुलगुले रेशमी मसनद और तकियों में डूबा हुआ-सा गयासुद्दीन बैठा था। खवासिनें रत्नजटित सोने की सुराही और कटोरे लिये खड़ी थीं। नीचे उसका मुँह लगा ख्वाजा मटरू बैठा था। एक दो कटोरों को चूस कर उसने खवासिनों को बिदा कर दिया। खिड़की से ठंडी हवा के झोंक पर झोंक आ रहे थे। गयास को फुरेरी आई।

ग्राम जीवन का चित्रण करने में प्रेमचन्द की लेखनी जितनी सफल रही, उतनी किसी लेखक की नहीं हुई। परन्तु 'मृगनयनी' में वर्मा जी ने कुछ स्थलों पर ग्रामीण जीवन के जो चित्र खींचे हैं, उन्हें पढ़कर एक बार प्रेमचन्द की शैली का स्मरण हो आता है। प्रेमचन्द की तरह वर्मा जी ने भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों पर ध्यान दिया है:—

"सघन वर्षा से थोड़ा सा अवकाश मिलते ही अटल ने बँधियों वाले एक खेत में धान बो लिया। पास लगे हुए एक ढलवे खेत में थोड़ी सी ज्वार, बाकी भूमि को उनारी के लिए रख छोड़ा। कुछ समय के उपरांत धान के बीज जम निकले, जैसे ही धान कुछ बड़ी हुई, खेत में फैलाकर जमा दी। बहुत पानी बरसा और भर गया, तो एक ओर से बँधिया को काटकर फालतू पानी निकाल दिया। दो महीने में धान खेत में लहराने लगी, ज्वार भी बड़े-बड़े पत्तों वाली और होनहार। भाई बहिन और लाखी, तीनों खेतों की रखवाली में तत्पर थे।"

कहीं कहीं पर वर्मा जी ने वर्णनों में कल्पना का पुट देकर अपनी कवि-प्रतिभा का परिचय दिया है। उद्भावनाओं से सजे हुए वर्णन पाठक के मन में सुन्दर भाव जाग्रत करते हैं:—

"बरसात छीजने को आ रही थी। पानी कई दिन से नहीं बरसा था।.....दक्षिण की वायु वेग से चल उठी थी। परन्तु नदियाँ और नाले अब भी उन्माद पर थे। ऊँची नीची पहाड़ियों और नदियों

के बीच के मैदान हरियाली से लद गये थे। जंगल में कोसों तक मैदानों और पहाड़ों के पार्श्वों पर वृक्ष विशाल चमत्कार और हरियाली से भर गये थे। पहाड़ की चोटियों के किनारे किनारे लहलहाते वृक्षों के पंक्तिबद्ध समूह कंगूरों पर नाचते हुये मोरों जैसे प्रतीत होते थे। उन पर इधर से उधर उड़ते हुये सुग्गों-तोतों की पाते हरिहाली से होड़ लगाती थीं। सुग्गों की लाल चोचें उन पेड़ों पर उड़ते हुये लाल छींटे से जान पड़ते थे। नालों की ढाँ पर हरसिंगार फूल उठा था। मधु मक्खियाँ सनसनाकर इन फूलों से अपना कुछ संग्रह कर उठी थीं।"

वर्मा जी की शैली की दूसरी विशेषता भावप्रकाशन में पाई जाती है। यहाँ पर इन्होंने अपने मानव स्वभाव के ज्ञान का पूर्ण परिचय दिया है। जब दो मित्रों में एक साधारण सी बात को लेकर मन मुटाव हो जाता है, दोनों बड़े खिन्न हो जाते हैं परंतु तुरंत ही उनमें मेल हो जाता है और सारा क्रोध कुहासे की तरह विलीन हो जाता है। ऐसे दृश्य 'मृगनयनी' में कई जगह मिलते हैं। शिकार के मौके पर निन्नी से लाखी बिगड़ जाती है। थोड़ी देर बाद ही—

'निन्नी ने लाखी के गले में हाथ डालकर कहा—सौगन्ध खाती हूँ कि आगे फिर कभी ऐसी बातचीत नहीं करूँगी।'

'अनाथ जानकर चाहे जो, कुछ कह लेती हो।'

'अपने को अनाथ कह कर मुझको भद्दी डाइन मत बनाओ अनाथ तो मैं हूँ। सौगन्ध खाती हूँ, अपने प्यारे से प्यारे की सौगन्ध खाती हूँ कि चाहे जो कुछ हो जाय आगे कभी नहीं लड़ूंगी।"

इस सौगन्ध के खाते ही लाखी निन्नी से हिलक कर चिपट गई।

कथोपकथनों की भाषा सीधी साधी है। निन्नी और लाखी के वार्तालापों में सादगी है परन्तु वही निन्नी जब मृगनयनी रानी बन जाती है, तो कला और संगीत पर विचार प्रकट करने लगती है क्योंकि राजमहल में जाकर उसे नागरिकता की शिक्षा मिली। उस स्थल पर भाषा में तत्समता और दुरूहता है। इसी

प्रकार पात्रों के स्वभाव के अनुकूल भी भाषा का प्रयोग किया है। दो ग्रामवासियों (लाखी और निन्नी) परस्पर हास्य और विनोद किस प्रकार करती हैं देखियेः—

निन्नी हँसी—तुम्हारे दूल्हा तो कह गये हैं कि तीरों की चिंता मत करो।'

लाखी ने उसका गाल मसल दिया।

'अरी री री !' निन्नी ने हँसी के तूफान में कहा।

निन्नी लाखी की सखी है। उसे मालूम है कि लाखी उसके भाई अटल से प्रेम करती है। अतः वह दोनों की भावी सम्बंध का उल्लेख करके बार बार लाखी को चिढ़ाती है।

वर्मा जी को शिष्ट हास्य से प्रेम है। वे कहीं कहीं पर व्यंग्य चित्र खींच देते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा मुहावरे दार है। पढ़ कर हँसी आये बिना नहीं रहती। महमूद बघर्रा के शरीर और उसकी कलेवा का हाल पढ़नेवाला हैः—

"महमूद बघर्रा साढ़े तीन हाथ से अधिक ऊँचाई का था, परन्तु चौड़ा इतना था कि बौना मालूम होता था। इस समय आयु उसकी लगभग पैंतालीस वर्ष की थी। मूछें इतनी लम्बी कि सिर पर उनकी गाँठ बाँधता था और दाढ़ी नाभि के नीचे तक फटकार मारती थी।"

"सबेरे हाथ मुँह धोकर बारहदरी की दालान में तख्त पर आ बैठा। नौकर कलेवा ले आये। डेढ़ सौ पके केले, सेर भर शहद और सेर भर मक्खन। यह रोज का कलेवा था। किसी दिन रात में जागने के कारण कुपच हो गया तो केले के बल सौ। शहद और मक्खन की तौल में कोई कसर नहीं।"

"महमूद ने कलेवे पर हाथ साफ करने शुरू किये। ढेर गायब होने लगे। समाचार देने और आदेश लेने के लिये प्रधान जासूस सरदार और खबरनवीस हाजिर हो गये। सब सिर नवाये, हाथ जोड़े खड़े थे। कलेजे में धड़कन, होठों पर कड़ी मुहर।"

महमूद बघर्रा के प्रसंग में वर्मा जी ने कुछ उपमाओं का प्रयोग किया है। यह उपमायें कुछ विचित्र सी हैं। सम्भवतः लेखक का उद्देश्य 'हास्य' प्रकट करता रहा है। परन्तु ऐसी उपमाओं की उन्होंने इतनी भरमार कर दी है कि वे भद्दी जान पड़ती हैं। उदाहरण के लिये—

(१) बघर्रा बोला, जैसे जमीन के नीचे दग्गर में होकर भूकंप बोला।

(२) एक लम्बी डकार ली जैसे बरसात में कच्चा मकान गिरा हो।

(३) बघर्रा ने फिर डकार ली जैसे कोई बड़ी धौंकनी फटकर बोल गई हो।

(४) पिल्ली के कानों को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी बड़े हौज में भैंसा कूदा है।

यह उपमायें बहुत अच्छी नहीं जँचतीं।

वर्मा जी ने अपनी भाषा में स्थानीय शब्दों का खुल कर प्रयोग किया है। कहा नहीं जा सकता, यह उनकी शैली का गुण है अथवा अवगुण। यदि पात्रानुकूल भाषा उचित है, तब तो यह गुण है अन्यथा ग्रमीणता की छाप का दोष उनकी शैली में आ गया है यह मानना पड़ेगा। ऐसे स्थानीय शब्द अपरिचित से जान पड़ते हैं परन्तु यदि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है तो इस प्रकार के स्थानीय आवश्यक शब्द उसे आत्मसात् करने ही पड़ेंगे। कुछ नमूने यह हैं:—

चौंकते चौंकते, डिटौना; बिगस गया, आँसैं भीग चुकी थी, झंकूटों, दाँत भीचे, झीम आई, बिजूका, बक नहीं फटता, नट जाना, रार, साखी, गढ़े में लोटेंगे, गाह लिये, तोरई छोकता है, आदि।

साहित्यिक भाषा के साथ इन शब्दों का प्रयोग, रेशम के साथ टाट सिला हुआ-सा जान पड़ता है।

श्री राजेंद्रसिंह गौड़ एम० ए० के शब्दों में वर्मा जी की शैली दो प्रकार की है—वर्णनात्मक और भावात्मक। उनकी

इन दोनों प्रकार की शैलियों में उनका शब्द चयन शिष्ट, भावपूर्ण और संयत है। इनमें उनके वाक्य छोटे और अर्थपूर्ण हैं, पर कहीं कहीं वे शिथिल हो गये हैं। उनके वाक्य विन्यास में प्रौढ़ता नहीं है। अपनी वर्णनात्मक शैली में उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता से भी काम लिया है। इस प्रकार उसमें सब कुछ है प्रवाह है और वेग नहीं है। उनकी भावात्मक शैली अवश्य प्रवाहपूर्ण और आकर्षक है। पर उपमाओं के अत्यधिक प्रयोग के कारण कहीं कहीं उसमें बाधा भी पड़ी है। उनका प्राकृतिक चित्रण बहुत ही अनूठा और प्रभावोत्पादक है। अपने वातावरण का चित्रण भी वह बड़े कौशल से करते हैं और उसका संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करते हैं। इसी प्रकार उनका मानवीय आकृतियों और व्यापारों का चित्रण भी प्रभावोत्पादकता से परिपूर्ण है। पर इतना होते हुए भी ऐसा लगता है जैसे भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार नहीं है और उनका कोष भी सीमित है। उनकी भाषा में न तो प्रवाह है और न आकर्षण। वह लड़खड़ाती सी जान पड़ती है। अनेक स्थलों पर उनके वाक्य अंगरेजी के अनुवाद से प्रतीत होते हैं, जो हिंदी-भाषा-भाषी की आत्मा का स्पर्श नहीं करते। कहीं कहीं उनकी शैली में शब्दों का अनुपयुक्त प्रयोग और व्याकरण संबंधी अशुद्धियाँ भी खटकती हैं। पर इन दोषों का परिहार उनकी भावात्मक शैली में हो जाता है।"

'मृगनयनी' में प्रकृति वर्णन

प्रकृति और मनुष्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यद्यपि मनुष्य नगरों में रहकर प्रकृति से अधिकाधिक दूर होता जा रहा है। 'जड़' और 'चेतन' में अन्तर स्थापित करके मनुष्य ने अपने को प्रकृति से श्रेष्ठ ठहराया है परन्तु समय समय पर इस विचारधारा के विरुद्ध मनुष्य ने विद्रोह भी किया है। पाश्चात्य

देशों में वडसवर्थ और रूसो प्रभृति दार्शनिकों ने प्रकृति और मनुष्य में कोई अंतर नहीं बताया है। यह तो केवल अनुभव करके ही बताया जा सकता है कि इन दोनों का संबंध कहाँ तक है परन्तु वास्तविकता इतनी अवश्य है कि प्रकृति के निकट रह कर मनुष्य को अपूर्व सुख मिलता है। शहर की चमक दमक, उथल पुथल और वहाँ के शोर गुल से ऊब कर मनुष्य आज भी प्रकृति की गोद में विश्राम पाने के लिये दौड़ पड़ता है। विकासवादियों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जिस प्रकृति को हम जड़ समझते हैं, उसमें भी जीवन है। सम्भव है, ऊपर से हम उसे देख न पाते हों परन्तु उनमें जीवन किसी न किसी रूप में विद्यमान है। अभी कुछ वर्ष पूर्व वृक्षों को ही निर्जीव समझा जाता था। आज वैज्ञानिकों ने उन्हें भी चेतन जगत् का प्राणी सिद्ध कर दिया है। पता नहीं भविष्य में वैज्ञानिक लोग पत्थर और पानी आदि में जीवन के दर्शन कर लें। इस चेतन शक्ति की उपस्थिति ही मनुष्य और प्रकृति की एकात्मता का कारण है। यही कारण है मनुष्य के जीवन को प्रकृति से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य में प्रकृति का स्थान सदैव अक्षुण्ण रहेगा।

'मृगनयनी' में प्रकृति वर्णन के अनेक प्रसंग आये हैं। उपन्यास की प्रधान नायिका मृगनयनी प्रकृति के बीच बसे हुये राई गाँव में उत्पन्न हुई और वहीं वह अटल और लाखी के साथ खेली। राई गाँव के पास बहती हुई साँक नदी सघन पेड़ों से भरे हुये बन और लहलहाते हुये खेत तथा वनस्पति—सभी रंगमंच के रूप में हैं जिन पर 'मृगनयनी' के पात्र अपने जीवन का नाटक खेलते है। सारे उपन्यास की पृष्ठभूमि प्रकृति ही है। शिकार के प्रसंग में प्रकृति का पूर्ण प्रयोग हुआ है। वर्मा जी ने प्रकृति का वर्णन यत्र-तत्र किया है परन्तु पूर्ण पुस्तक पढ़ जाने के बाद हम कह सकते हैं कि वर्मा जी का प्रकृति के साथ अधिक रागात्मक

संबंध नहीं। निश्चय के साथ कहा नहीं जा सकता कि वर्मा जी प्रकृति प्रेमी नहीं हैं क्योंकि उपन्यास में वर्णन करने की बहुत अधिक स्वतंत्रता होने पर भी प्रकृति के वर्णन उस रूप में नहीं किये जाते हैं जिस हद तक कवि प्रबंधकाव्यों में उसका उपयोग करते हैं। काव्यों में प्रकृति-वर्णन एक परम्परा के रूप में आदि काल से चला आता है। उपन्यास में लेखक का ध्यान अधिकतर घटनाओं की ओर ही रहता है, प्रकृति की ओर नहीं। इस दृष्टि से मृगनयनी में प्रकृति वर्णन का उपयोग उचित मात्रा में ही हुआ है।

वर्मा जी ने प्रकृति-वर्णन किये हैं परन्तु वे बहुत देर तक वर्णन करने में लगे नहीं रहते, दो-चार वाक्य कह कर, वे कथा की ओर चले जाते हैं। उदाहरण के लियेः—

"चन्द्रमा का उदय हो आया, अब चाँदनी छिटक चली। पास के और दूर के खेतों से रखवालों की हा-हा, हू हू सुनाई पड़ने लगी। ठंडी हवा डैने से मार कर सरसराने लगी। निन्नी ने अपनी माटी चादर लपेटी और अटल के पैताने रक्खी हुई दूसरी चादर उसको उढ़ा दी।"

प्रकृति वर्णन के साथ-साथ मिली हुई कथा प्रवाहित रहती है। प्रकृति वर्णन स्वतंत्र नहीं रहते। उपन्यास में यदि लम्बे वर्णन होते हैं, तो वे कथा के प्रवाह में बाधा खड़ी कर देते हैं। इस दृष्टि से वर्मा जी ने बड़ी कुशलता के साथ प्रकृति वर्णन का निर्वाह करते हुये कथा के प्रवाह में बाधा भी नहीं आने दी है। कहीं-कहीं पर प्रकृति वर्णन लम्बे हैं परन्तु उस वर्णन के अंत में कथा को जोड़ कर, उन्होंने उसे स्वतंत्र होने से रोक दिया है। यह लम्बे वर्णन काव्य की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। उनमें कल्पना का इतना सुन्दर पुट वर्मा जी ने दिया है कि वे वर्णन बड़े अलंकृत जान पड़ते हैं। इनमें उनकी उद्भावना शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। एक उदाहरण देखियेः—

"खेत से थोड़ी ही दूर नदी बह रही थी। उसके एक सिरे का पानी बहता हुआ दिखाई पड़ रहा था। चंद्रमा की चांदनी रिपटती झिलमिल जान पड़ती थी मानों चाँदी की चादरों के आवरों पर आवरे चिलचिला रहे हों। छोटी-छोटी सी आड़ी सीधी लहरें उठ उठकर इन आवरों को पहन लेती थीं। सम्पूर्ण लहरों का समूह चाँदी की उन चादरों को ओढ़ लेने की होड़ सी लगा रहा था। पवन के आने जाने वाले झकझोरे इन आवरों को और भी चंचल कर रहे थे। लहरों की कलकल झोंकों पर नाचती-खेलती हुई खेत के पौधों की झूम पर उतर-उतर पड़ रही थी। चंद्रिका खेत के हरे पौधों की अधपकी बालों को अपनी कोमल उँगलियों से खिला सी रही थी। हरी पत्तियों पर जमे हुए ओस-कण चमक चमक कर बिखर-बिखर जा रहे थे। निकटवर्ती जंगल के लम्बकाय वृक्षों के बड़े-बड़े पल्लवों को खरभरा कर पवन मानों किसी दूर देश को चला जा रहा था। कभी सनसनाहट और कभी सड़ासड़ाहट। इन्हीं ध्वनियों में होकर नाहर से डरे हुए साँभरों और चीतलों की कभी तीक्ष्ण और कभी मंद पुकारें। निन्नी ने सोचा, जानवर दूर है, परन्तु उसने मन पर इस आश्वासन को टिकने नहीं दिया·····।"

उपमा और उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग ने वर्णन को सजीव बना दिया है। साथ ही वर्णन पढ़ते समय लेखक की पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय मिलता है, जो प्रकृति वर्णन के लिए अत्यधिक आवश्यक है। 'चाँदनी' और 'लहरों' के खेल का जितना सुन्दर वर्णन उक्त पंक्तियों में है, वह लेखक की पर्यवेक्षण प्रकृति के बिना सम्भव नहीं हो सकता था। चाँदनी रात की नीरवता का यह अभूतपूर्व वर्णन है। वर्मा जी की कुशल लेखनी में इतनी शक्ति है कि वह कभी-कभी तूलिका का रूप धारण कर लेती है। शब्दों के सहारे वह चित्र खींच देती है:—

"एक दिशा में उन रजत लहरों के उस पार छोटी छोटी पहाड़ियों के ऊपर एक ऊँची पहाड़ी सिर उठाकर धूमिल नेत्रों में चाँदनी को भर सा लेना चाहती थी, ऊँची पहाड़ी का शिखर धुयें का स्थिर पुंज सा दीख पड़ता था। नदी के उस पार दूसरी दिशा में, विशाल वृक्षों की सेज के पीछे एक ऊँचा पहाड़ चंद्रमा को मानो नीचे उतर आने के लिए आवाहन-सा दे रहा था। बीच बीच में पतोखी टीं-टीं चीं-चीं कर देतीं थीं जिसमें न तो चाँदनी विचलित हो रही थी और न पर्वत के ऊँचे शिखर का ध्यान ही। आदि।"

इस प्रकार का वर्णन पढ़ते-पढ़ते तो हमें बाणभट्ट की कादम्बरी की याद आ जाती है। वर्मा जी की कल्पना में एक विशिष्ट मौलिकता है। प्रकृति के दृश्यों का आनन्द केवल आँखों द्वारा ही उन्होंने नहीं लिया है। वर्डसवर्थ की तरह उन्होंने भी एकांत में बैठकर उस पर चिंतन किया है। उनकी स्मरणशक्ति इतनी तेज है कि उस दृश्य का एक-एक पहलू (Detail) पाठक के सामने रख देने में वे समर्थ हैं। इन वर्णनों में प्रकृति चेतन-शक्ति से भरपूर जान पड़ती है।

भारत देश में वर्षा की ऋतु अपनी मादकता के लिए प्रसिद्ध है। वर्षा बहार का वर्णन सभी ने किया है। उनकी तुलना में वर्मा जी भी पीछे नहीं हैं। नीचे उनका वर्षा वर्णन दिया जाता है। उसमें उन्होंने बड़ी मधुरतर भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने रेखांकित भाग में उद्भावना शक्ति का परिचय देकर पाठक को चमत्कृत कर दिया है:—

"बरसात छीजने को आ रही थी। पानी कई दिन से नहीं बरसा था। दूसरी बिखरी बदली छितरा-छितरा जाती थी, परन्तु दिन में धूप और रात में तारे प्रायः निकल आते थे। दक्षिण की वायु वेग से चल उठी थी। परन्तु नदियाँ और नाले अब भी अपने उन्माद पर थे। ऊँची नीची पहाड़ियाँ, पहाड़ियों और नदियों के बीच के मैदान हरियाली से लद गये थे। जंगल में कोसों तक मैदानों और पहाड़ों के पार्श्वों पर वृक्ष, विशाल

चमत्कार और हरियाली से भर गये थे। पहाड़ की चोटियों के किनारे किनारे लहलहाते वृक्षों के पंक्ति बड़ समूह कंगूरों पर नाचते हुये मोरों जैसे प्रतीत होते थे। उन पर इधर उधर उड़ते हुये सुओं—तोतों की पांतें हरियाली की होड़सी लगती थी। सुओं की लाल चोंचें उन पेड़ों पर उड़ते हुये लाल छींटे से जान पड़त थे। नालों की ढी पर हरसिंगार फूल उठा था। मधु मक्खियाँ सन सनाकर इन फूलों से अपना कुछ संग्रह कर रही थीं।"

वर्मा जी के प्रकृति वर्णनों में काव्यगुण प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कल्पना और उद्भावना इन वर्णनों की जान है। वर्मा जी ने इनका खुलकर प्रयोग किया है। यह वर्णन उचित मात्रा में और प्रसंग के अनुसार दिये गये हैं। उनका उद्देश्य कथा को बल देना है। वर्मा जी इस दिशा में काफी सफल हुये हैं।

'मृगनयनी' में लेखक का व्यक्तित्व

साहित्य की प्रत्येक कृति का सबसे बहुमूल्य अंश वह है जहाँ हमें उसके प्रेरणा के व्यक्तित्व के दर्शन मिलते हैं। व्यक्तित्व विहीन कृति का कोई मूल्य नहीं। यह व्यक्तित्व क्या है ? प्रत्येक लेखक की कुछ विशेष परिस्थितियाँ होती हैं, जिनके बीच में पल कर, वह कुछ विशेष अनुभव करता है। वह स्वयं अध्ययन भी करता है। फलतः जीवन के प्रति उसका एक दृष्टिकोण बन जाता है। यह दृष्टिकोण लेखक का जीवन दर्शन कहलाता है। उसके सारे कार्य—चाहे वे भौतिक जगत् में हों या मानसिक जगत् में, उसके जीवन दर्शन के द्वारा ही शासित होते है। जब वह साहित्य की रचना करने लगता है, तो उसकी कृति में उसके विशेष अनुभव, उसके ज्ञान, इनके बीच उसके जीवन दर्शन की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप, से अभिव्यक्ति हो जाती है। इन्हीं के आधार पर एक लेखक की रचना, दूसरे लेखक की रचना से भिन्न हो जाती है। यही विशेषता लेखक का व्यक्तित्व कहलाती

है। 'मृगनयनी' में उसके लेखक के अनुभव, उसके विचार, ज्ञान और दृष्टिकोण संचित हैं। उन्हीं का विश्लेषण करना हमारा अभीष्ट है।

वर्मा जी का मुख्य अनुभव क्या है? उनकी विशेष रुचि क्या है? इस सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं—"आप कभी बुंदेलखंड के भीतर स्थानों में घूमे हों, तो आपको स्मरण होगा कि यह दरिद्रखंड कितना विभूतिमय है। हम लोगों के पास पैसे नहीं हैं, हरन्तु हम लोग फिर भी फागें और राछरे गाते हैं, अपनी झीलों और नदी-नालों के किनारे नाचते हैं और अपनी रंगीली कल्पना में मस्त हो जाते हैं।.....मैंने पढ़ा कम है, खेला बहुत है।" वर्मा जी को अपने प्रांत से विशेष मोह है। बुन्देलखंडी जीवन की गहरी छाप 'मृगनयनी' में है। इस उपन्यास के प्रथम दो अध्यायों में बुंदेलखंड के ग्रामीण जीवन, वहाँ की संस्कृति का सुन्दर चित्र मिलता है। यह सब वर्मा जी के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रमाण है। होली के दिनों में, गाँव के निर्धन किसान किस प्रकार रंग के बदले कीचड़ उछालते हैं, किस प्रकार ग्रामबालायें और युवतियाँ लज्जा के आवरण में भी हास-परिहास करती हैं, इन सबका परिचय दो परिच्छेदों में मिलता है। राई गाँव बुन्देलखंडी ग्रामीण संस्कृति का प्रतिनिधि है। ग्राम्य वातावरण का चित्र उतारने में वर्मा जी ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

वर्मा जी का अनुभव केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं। वे घूमने घामने और यात्रा के प्रेमी हैं। इसलिये उन्हें विभिन्न के रहन-सहन का पूरा ज्ञान है। उदाहरण के नट जाति को लीजिये। यह एक खानाबदोश जाति है। यह लोग एक स्थान पर बस कर रहना नहीं जानते। खेल-कूद के तमाशे दिखाकर यह नगरवासियों का मनोरंजन कर देते हैं और कुछ पैसे कमा लेते हैं। नगरों या गाँवों में जाकर यह कुछ पैदा कर लेते

हैं। इनकी सम्पत्ति में खच्चर या भैंसे शामिल हैं। इन्हीं पर सामान लादे हुए वे लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में रमते हुए घूमा करते हैं। दाल बाँधकर यह लोग चलते हैं। धर्म, शिष्टाचार, शिक्षा, इनसे यह दूर है। इनकी संस्कृति अनोखी है। वर्मा जी के इस सम्बन्ध में अनुभव देखियेः—

"नटबेड़िये दस-पंद्रह से अधिक न होंगे। पेड़ों की झुरमुट में थुमियों के ऊपर घास और पत्तों से कुछ झोपड़ियाँ छा रक्खी थीं। एक बड़े से झोपड़े में उनके गधे, दो भैंसे और बकरियाँ बकरे बँधे हुए थे। कुछ बंदर खूटियों से, एक झोंपड़े के किनारे कमठे, तीरों भरे तरकस और लम्बे छुरे रक्खे हुए थे। छोटे बच्चे डाल से टँगी हुई डालियों में थे। पाँत-सात अधेड़ और जवान स्त्रियाँ खाना पकाने में लगी हुई थीं। पुरुष एक मारे हुए जानवर की काट-छांट मे लगे हुए थे। उन सबके केश लम्बे थे। पुरुष फटी मैली धोतियाँ पहने हुए थे। स्त्रियां चिथड़ों गुदड़ोंदार पायजामे। ओढ़नी कोई नहीं ओढ़े थी। उरोजों पर केवल चोली कसे हुए। कानों में जस्ते की बालियाँ और नाक में पीतल के बड़े-बड़े नथ। गले में कांच के रंग बिरंगे गुरियों की माला।

शायद ही किसी उपन्यास में ऐसे अनुभव मिलें। पिल्ली और पोटा के खेलों का वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक है। उनके साथ लाखी और अटल का पर्यटन तथा उनके अनुभवों का वर्णन पढ़ने योग्य है। वर्मा जी भारतीय संस्कृति के पक्षपाती है परन्तु उन्हें इस्लामी समाज का भी अच्छा ज्ञान है। इस्लाम के अनुयायिओं की धर्मांधता और विलास-प्रियता के चित्र उन्होंने मृगनयनी में खींचे है।

अनुभव के कोष को बढ़ाने के लिए पर्यवेक्षण शक्ति का होना आवश्यक है। वर्मा जी में यह शक्ति है। वे किसी भी स्थान, मनुष्य यो परिस्थिति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन बड़ी सफलता के साथ कर सकते हैं, उसका कारण यही है कि उन्होंने साधारण

से साधारण बात को बड़े ध्यान से देखा है । नरवर के किले के भीतर नट लोग टिके थे । वे रात में लाखी को फँसा कर ले भागने की योजना में व्यस्त थे । उस समय का सुन्दर चित्र देखने योग्य है। आग जलने के कारण, किस प्रकार एक कण-कण आलोकित हो उठा:—

"कुछ रात गये, नटों ने चुने हुए इंधन में आग लगाई। हवा नहीं चल रही थी । धुयें का एक ऊँचा खंबा-सा आकाश की ओर गया । फिर आग चेती । उसकी लौ धुयें को चीर चीर कर आकाश को चूमने लगी । इतना उजेला हुआ कि मुहल्ले के मकानों के खपरे गिन लिए जायँ । बहुत से लोग तापने के लिए आ गए और ताप-तापकर आँच के कारण पीछे हटने लगे। ईंधन सूखा और पतला था, इसलिए घड़ी दो घड़ी का प्रकाश देकर यकायक कम होने लगा । थोड़ी देर में हलकी हलकी लपटें, ढेरों राख और राख के बीच में अंगारे रह गए । तापने वाली भीड़ धीरे धीरे कम हो गई । नट, लाखी और अटल अपने बिस्तरों में जा लेटे । एक पहर रात बीते ईंधन के स्थानपर राख से ढकी हुई कुछ चिनगारियाँ ही रह गयीं । लोग ऊँघने और सोने लगे। नट वर्ग जाग रहा था ।"

रात के समय जाड़े के दिनों में तापने का खुलासा चित्र सामने है । उसका एक एक अँग खोलकर सामने रख दिया गया है । पर्यवेक्षण शक्ति के बिना लेखक सफलतापूर्वक कभी भी इतने सुन्दर चित्र नहीं खींच सकता । रात्रि के समय एक निर्धन और रोग से पीड़ित स्त्री की कुटिया में चल कर लेखक की पैनी दृष्टि का एक नमूना और देखिये:—

"निपट अँधेरी रात । संध्या के उपरांत ही ग्वालियर का बाजार बन्द हो गया । सड़कों पर चहल-पहल शांत हो गई । घरों के भीतर कलरव था, पर बाहर सुनसान सा । दो घंटे रात गये ही अँधेरे में ऐसा लगता था जैसे आधी रात होने वाली हो । नगर के छोर पर एक झोपड़ी

में दिया टिमटिमा रहा था जिसका तेल समाप्त होने को था; फिर बत्ती घड़ी आधी घड़ी डिगमिगाते डिगमगाते सुन्न पड़ जाती थी। झोपड़ी के भीतर एक कोने में आग दहक रही थी। ठंड के मारे सिकुड़ी हुई, फटी मली कुचैली कथरी में ढेर सी बनी हुई एक स्त्री आग के पास पड़ी पड़ी कराह रही थी। कई बच्चे उसके निकट बैठे पड़े रो रहे थे और उतरती अवस्था का एक पुरुष दिये के टिमटिमाते हुये प्रकाश में, सूप में रक्खे हुए अनाज का बीन रहा था।"

लेखक को गरीबी का पूरा अनुभव है। ऐसे दृश्य कहीं भी मजदूरों और किसानों की झोपड़ियों में देखे जा सकते हैं। वर्मा जी ने इनका स्वयं अनुभव किया है और उनकी निगाह हर एक चीज पर पहुँची है। उपर्युक्त गद्यांश में रेखाङ्कित पंक्तियाँ उनके पर्यवेक्षण का परिचायिका है। वर्मा जी की इस योग्यता का पूर्ण परिचय हमें गूजरी महल के उत्तरीय भाग के पश्चिमी कक्ष में एक मंच पर निर्मित नटराज की सोने की मूर्ति के वर्णन में मिलता है :—

"नटराज की मूर्ति एक विकसित कमल पर खड़ी थी। गोलाकार कमल की पंखुड़ियों से झरती हुई आभा का एक मंडल बनाया गया था। इस मंडल से मूर्ति की दोनों ओर लौ निकलती हुई रची गई थी मूर्ति चतुर्भुजी थी। एक दायें हाथ में डमरू, दूसरा बायाँ हाथ वरदमुद्रा में। डमरू वाले हाथ को उस ओर वाली आभा की लौ छूट रही थी। एक बायें हाथ में अग्नि, दूसरा कमल के पार्श्व में पड़े हुए बौने की ओर संकेत करने वाला। आग वाले हाथ को दूसर पार्श्व की लौ छू रही थी। कमर में मणियों की करधनी। कन्धे पर जनेऊ। एक कान में पुरुषों जैसा कुंडल, दूसरे में स्त्रियों जैसा बाला। केश जूट में मुक्तामाला। एक लट अलग झूमती झूमता हुई। एक जटा में साढ़े चार कुंडलिया मारे हुये नाग, छोटा सा मुण्ड और गंगा का प्रतिबिम्ब और चौथा का चन्द्रमा। शरीर के आधे भाग पर व्याघ्र चर्म।"

पर्यवेक्षणण शक्ति के साथ वर्मा जी को कला का भी वरदान मिला है। उन्हें ललित कलाओं से विशेष प्रेम है। उन्हें साहित्य के साथ साथ संगीत, मूर्ति कला, चित्र कला आदि से भी प्रेम है। उनके व्यक्तित्व के इस पहलू के दर्शन भी हमें मृगनयनी में मिलते हैं। वास्तव में, बैजू बावरा, विजय, मृगनयनी, कला और मानसिंह जैसे ऐतिहासिक पात्रों के सहारे ललित कलाओं के सम्बन्ध में उन्हें अपने अनुभवों और विचारों को प्रकट करने का पूरा अवसर मिला है। पहले संगीत को लीजिये। संगीत का सार इन पंक्तियों में निहित है :—

मानसिंह ने उमङ्ग भरे स्वर में कहा, 'आचार्य बैजनाथ, धन्य हो ! कितने तन्मय हो गये थे तुम रस में !! हम सब भी तल्लीन हो गये। इन्होंने तुम्हारे रस का पूरा स्वाद लेने के लिये अपनी वीणा ही रख दी, कला ने तम्बूरा और उन्होंने पखावाज ! हम सब डूब गये तुम्हारी रसधार में !!....'

बैजू असली कारण ढूढ़ने की चिंता में नहीं पड़ा। बोला, महाराज, आज मैं सब पागया। जीवन का सब कुछ पा गया। कलावंत को और चाहिये क्या ?'

'परन्तु हमको तो तुमसे अभी बहुत कुछ चाहिये।'

'मेरे पास है ही क्या ! जो कुछ है महाराज का है।'

'तुम अभी जिस ध्यान में मग्न थे, उसमें से कुछ हम लोगों को भी दो।'

'ह ! ह !! ह !!! सो कैसे ? और मैं तो गा रहा था, ध्यान तो सबेरे के समय करता हूँ। अभी क्या मैं सो गया था ?'

'सोये तुम नहीं थे। हम लोगों के भीतर वाले को जगा रहे थे।'

वास्तव में संगीत का मूल तत्व तन्यमता है। वह मनुष्य को ब्रह्मानंद का स्वाद दिलाता है। संगीत मनुष्य की सोई हुई आत्मा को जगाता है। कलाकार स्वयं उसका रस पान करके तृप्त होता है और दूसरों को भी तृप्त मराता है। बैजू बावरा दिन रात संगीत

के पीछे दीवाना रहता है। नवीन परिपाटी निकालने में नई ध्वनियों का निर्माण करने में इतना व्यस्त रहता है कि उसे तन बदन की सुध नहीं रहती। कभी कभी वह उसके पीछे पागल हो उठता है। साथ ही उसके पागलपन में भी एक सिलसिला है—एक अर्थ है। उसके हृदय रूपी पुटपाक में किसी शुद्ध संगति परिपाटी का जन्म होता रहता है। अन्त में वह ध्रुवपद से होरी गायकी की रूपरेखा बना लेता है। यह सब इस बात का प्रमाण है कि लेखक संगीत की विभिन्न परिपाटियों से पूर्णतया परिचित हैं। संगीत के क्षेत्र में वर्मा जी प्राचीन परिपाटियों के समर्थक हैं परन्तु वे नवीनता के विरोधी नहीं। वे प्रगतिवादी हैं, इसलिए वे नवीन परिपाटियों का समर्थन विजय के द्वारा करवाते हैं। कहीं कहीं पर वर्मा जी का दृष्टिकोण आलोचनात्मक हो जाता है। वे आँख बन्द के प्राचीन शास्त्र सम्मत संगीत प्रणालियों के भक्त नहीं। उन्होंने मृगनयनी के मुँह से कहलाया है—"मैं समझ गई गायन की इस रीति को। महाराज से कहूँगी कि इसको थोड़ा संक्षिप्त और करवा दें। दीर्घकाल तक गाते रहने में समय बहुत लग जाता है, रस का गाढ़ापन चला जाता है और राग क्षीण हो जाता है।"

संगीत के साथ वर्मा जी की गति नृत्य में भी है। उन्हें नृत्य कला के हावों, भावों और मुद्राओं का अच्छा ज्ञान है। नृत्य के समय नर्तन करने वाला कलाकार हावों और मुद्राओं द्वारा ही रसाभास कराता है। प्रत्येक हाव-भाव और मुद्रा का कोई सांकेतिक अर्थ होता है। उसे इस कला के विद्यार्थी ही समझ सकते हैं। वर्मा जी ने उसका वर्णन 'मृगनयनी' में एक स्थल पर मृगनयनी के नृत्य के अवसर पर किया है वह ताण्डव-नृत्य था:—

"विश्व की समूची क्रिया को अनादि शिव का ताण्डव नृत्य व्यक्त करता है। चार हाथ चारों दिशाओं में अखिल व्यापकता, डमरू नाद और शब्द जिससे विश्व का विकास बना, वरदहस्त रक्षा, अग्नि विश्व व्याप्त

शक्ति, चौथा हाथ नृत्य के लिए उठे हुए चरण के प्रति उठे हुए हाथ शरण दान को प्रकट करने वाले। अर्ध चंद्र जागते हुए ध्यान कंद्र को और नाग धारण की स्थिति को बतलाने वाले। संत् के साथ संबंध इसी साधन द्वारा सम्भव। शिव के हिमालय से आने वाली गंगा भारत को समृद्धि और श्रद्धा देनेवाली। एक कान का कुंडल और दूसरे कान की वाली पुरुष और शक्ति की द्योतक। कमर की मणि मेखला, जागी हुई शक्तियों को कमर के नीचे न जाने देने और ऊपर की ओर ही प्रवाहित कर देने के लिए—ऊधरेखा जनाने के लिए कटिबद्ध। कमल विश्व का साँचा, शिव की अनन्त पावनता का प्रतीक। कमल के चारों ओर का प्रभामंडल शिव के विश्व व्याप्त ओज का प्रतिविम्ब। मुंड अहंकार के दमन का द्योतक।"

वर्मा जी इतिहास से प्रेम रखते है। फलतः संगीत के इतिहास की ओर उनकी दृष्टि जाना स्वाभाविक था। उपन्यास में कई स्थलों पर उन्होंने बताया है कि गूजरी टोड़ी, मंगल गूजरी जैसे राग मृगनयनी के नाम पर बने। बैजू ने कई राग मृगनयनी के सुझाव, प्रेरणा और सहकारिता से बनाये, जैसे गूजरी, माल गूजरी, हूल गूजरी, और मंगल गूजरी। जौनपूर के सुल्तान हुसेनशाह के नाम पर हुसेनी कान्हड़ा चला। बैजू बावरा मानसिंह का समकालीन था। ग्वालियर प्राचीन काल से संगीत का केन्द्र है। "ग्वालियर नगर में अनेक गृहस्थ गाने और वीणा बजाने के शौकीन हो गए थे। जिनको वीणा का वाद्य दुरूह जान पड़ा, उन्होंने सितार को पकड़ लिया। अमीर खुसरो ने दो सौ वर्ष पहले वीणा को सितार का रूप दे दिया था। ग्वालियर में सितार का चलन उसकी सुगमता के कारण हो गया था।

वर्मा जी को स्थापत्य, वास्तु और मूर्तिकलाओं का अच्छा ज्ञान है। वास्तव में इन कलाओं का उद्देश्य मानवीय भावों को मूर्त रूप में व्यक्त करना है। मृगनयनी में कई स्थलों पर वर्मा जी

ने इन कलाओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। मनुष्य पत्थर को काट छाँट कर उसमें जीवन डाल देता है और कला के इस माध्यम द्वारा वह अपने देश-काल की अभिव्यक्ति भी करता है, इसी कारण अनेक शैलियाँ प्रचलित हो जाती हैं। एक स्थान पर मानसिंह कहते हैं—"मैं तो टाँकी के हथौड़े की कविता और संगीत के ताल और तान को मूर्त करना चाहता हूँ, इस भवन में। किन उपादानों और साधनों (यह साधन मूर्ति और स्थापत्य बताये है) से हो, यह आप सरीखे विद्वान बतायें।....." मानसिंह दूसरे स्थल पर कहता है—"मेरी कविता नहीं तुम्हारी कविता। और, कारीगरों के ध्यान की कविता। मेरे शब्द कारीगरों को जो सूझ नहीं दे सके, उसको तुम्हारे दिये हुये मेरे भाव ने उनको दिया। कारीगरों ने योग साधा, उनके ध्यान में वह भाव मूर्त हुआ और टाँकी हथौड़े ने तुम्हारी कविता और मेरे भाव का पत्थर में उतार कर बसा दिया।" रेखांकित पंक्ति ही कला का मूल स्रोत है, चाहे वह संगीत हो, काव्य हो, या मूर्ति हो परन्तु जब मनुष्य के हृदय में भावोद्रेक होता है, तभी कला पयस्वनी प्रवाहित होती है। वर्मा जी इस मूलतत्व पर ही बार बार जोर देते हैं। जिन भावों को कवि शब्दों द्वारा या चित्रकार रेखाओं और तूलिका द्वारा व्यक्त करता है उन्हीं भावों को मूर्तिकार टाँकी और हथौड़े द्वारा अंकित करता है। वर्मा जी कहते हैं—"कलाकार के भीतर पूरी उपासना, आस्था, श्रद्धा और भक्ति याग के द्वारा जाग पड़े, तभी वह उस वरद मुस्कान को टाँकी हथौड़े के द्वारा पत्थर में उकसा कर पिरो सकता है।" पूर्ण तन्मयता कला-साधना की जान है। वर्मा जी इन तथ्यों से पूरी तरह अवगत है।

मूर्तिकला और स्थापत्य द्वारा मनुष्य के हाव भाव और मुद्रायें किस प्रकार व्यक्त किये जा सकते हैं, वह वर्मा जी से सुनिये :—

"वह कहता गया—ऐसे बड़े और छोटे द्वार बनवाऊँगा जिनमें होकर आने वाला प्रकाश तुम्हारी हँसी और मुस्कानों को व्यक्त करे, तुम्हारे केश कुंतल कपोलों की दोनों ओर छूट छूट जाने वाली लटें, उन द्वारों की वन्दनवारी सजावटों में उतर आयेंगी। तुम्हारी मुस्कानों के पीछे जो मोती से दाँत दमक जाते हैं, वे बेल बूटेदार झिझरियों की आभा द्वारा व्यक्त हो जायेंगे। (पृष्ठ २८८)"

गूजरी महल और मान मंदिर के वर्णनों में (पृष्ठ ४१५) वर्मा जी ने अपनी कला परख का प्रमाण दिया है। नटराज की मूर्ति का तो उन्होंने चित्र खींच दिया है। साथ ही इन भवनों के निर्माण में कई शैलियों का प्रयोग हुआ है। इन शैलियों के संबंध में, वर्मा जी ने पात्रों के कथोपकथनों द्वारा उनका इतिहास भी लिख दिया है। तैलंग शैली में शिव भक्तों की भावनाओं का पुट है। विजय जङ्गम, मानसिंह का मित्र था। उसने गूजरी भवन को इसी तैलंग शैली में बनाने का सुझाव दिया। इस शैली का वर्णन देखिये:—

"ऊपर के पहले खंड से दूसरे खंड को समाने के लिदे पहले खंड से ही चारों दिशाओं से विशाल त्रिभुवज बनते जायँ, जो ऊपर जाकर दो समानान्तर पटरियों को बनाते हुये मिल जायेंगे। अपने किले के भीतर तैल मंदिर में जैसा समन्वय पहाड़, शिखिर तुङ्ग, मंडप, मड़िया, आम के पेड़ की गोल गुम्मट और नदी नालों की लहरों तथा शिव के त्रिशूल का हुआ है, वैसा ही बड़े पैमाने पर। जब बन चुके, तब नाम रक्खा जाय मान मंदिर।"

इसके बाद तैलंग शैली की उत्पत्ति का हाल सुनिये :—

"छः सौ वर्ष हो गये जब ग्वालियर के राजा ने एक तैलङ्ग राज कुमारी के साथ व्याह कर किया। दक्षिण के कुछ शिल्पी उस राजकुमारी की प्रेरणा से आये। उनके और उत्तर के शिल्पियों के सहयोगसे वह मंदिर बना। तैल मंदिर का शिखर तैलङ्ग राजकुमारी की वान्छा का प्रतीक है और शिखिर के नीचे का सारा खंड उत्तर की परम्परा की मूर्ति है।" इस

तैलङ्ग शैली में, बाद में चलकर शैवों और वैष्णवों दोनों ने योग दिया। तेल मंदिर विष्णु के शंख, चक्र, गदा, पद्म के सौंदर्य और शिव के ऊँचे, लम्बे, तीक्ष्ण त्रिशूल तथा नंदी की महत्ता का समन्वय है।"

एक अन्य स्थल पर मृगनयनी का चित्रशाला का वर्णन पढ़ कर वर्मा जी के चित्रकला ज्ञान का परिचय मिलता है। उस चित्र शाला में "अवतारों के, देवताओं के चित्रों के साथ मानसिंह के विविध स्थितियों के चित्र थे। कौमुदी महोत्सव और वसंतोत्सव के भी। एक ओर राग-रागनियों के भी चित्र थे। एक चित्र अधूरा था। ·····रेखायें तैयार थीं, रंग नहीं भरे गये थे। ·····चित्र दो भागों में विभक्त था। एक भाग में वस्त्राभूषणों से सजी हुई एक सुन्दरी मंच पर बैठी है, एक पखावज लिये है, दूसरी स्वर मंडल का वाद्य, तीसरी वीणा पर उँगलियाँ फेर रही है। चौथी····। सारा दृश्य जैसे किसी रानी का दरबार हो। चित्र के दूसरे भाग में थोड़ी दूर पर पृष्ठ भूमि में जंगल और पहाड़ हैं। उनमें कुछ सशस्त्र शत्रु लुके-छिपे जान पड़ते हैं। रानी के दरबार के द्वार के बाहर एक योधा अनिश्चय की वृत्ति में खड़ा हुआ है—उसका एक पैर रानी के दरबार में जाने के लिये उठ चुका है; मुँह जंगल में छिपे शत्रुओं की दिशा में है और आँखें उस दरबार की ओर घिरी हुई हैं। उनके तरकस में तीर नहीं है, कमर में बँधी तलवार म्यान से आधी बाहर है।" वास्तव में यह चित्र व्यंजनात्मक है और चित्रकला की शास्त्रीय शैली का नमूना है। 'मृगनयनी' में वर्मा जी का मुख्य संदेशा यही रहा है कि सच्ची कला वही है जो युद्ध और शाँति दोनों में संतुलन कायम रख सके। "वीणा को बजाते-बजाते काम पड़ने पर यदि तुरन्त तलवार न उठ पाई···· ध्रुवपद को गाते गाते शत्रु के सामने आ खड़े होने पर यदि तुरंत गरजकर चिनोती न दे पाई, जिन कानों में मीठे स्वरों की रसधारा बह बह कर जा रही थी उन्हीं कानों में यदि रणवाद्यों और कड़खों

की धुन न समा पाई तो ऐसी वीणा, सेज, ध्रुवपद की तानों का क्या काम क्या है ?" ठीक यही भाव चित्र द्वारा मृगनयनी व्यक्त करती है। मानसिंह एक योधा के रूप में दिखाया गया है। वह एक ओर कला की उपासना के लिये रानी के दरबार में जाना चाहता है और दूसरी ओर शत्रुओं के आक्रमणों से होशियार भी है। वर्मा जी चित्रकला के ज्ञान का परिचय इस चित्रण के द्वारा देने में सफल हुये हैं।

वर्मा जी के शिकार सम्बन्धी अनुभवों के सम्बन्ध में लिखे बिना उनके व्यक्तित्व का चित्र अधूरा ही रहेगा। वे शिकार के दाँव-पेंच, घात और मुस्तैदी से पूर्णतया परिचित है। मृगनयनी और लाखी का पूर्व जीवन शिकार ही है। उनके चरित्र चित्रण की आड़ में वर्मा जी ने अपने शिकारी जीवन का परिचय दिया है। शिकारी को कितनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है, तब कहीं शिकार हाथ लगता है। धूल और धूप की परवाह नहीं, आँखें झाड़ियों को और पशुओं के खुरों के चिन्हों को टटोला करती हैं। डालियों और पत्तों के टूटने से ही उन्हें शिकार की उपस्थिति का पता चल जाता है। देखियेः—

"दोनों करघई की घनी झाड़ी में घुस जाने के लिए, सकरे छोटे से ही मार्ग की तलाश में झुक झुक कर हाँफ-हाँफ कर, साँस साध-साध कर फिरने लगीं। एक हाथ में कमान और दूसरे हाथ में सूर्य की प्रखर किरणों में चमक-चमक जाने वाला लोहे का तीर साधे हुये। निन्नी के होंठ सूख रहे थे, परन्तु उसने पानी न पीने का निश्चय किया। तपन के मारे लाखी के पैर जल रहे थे। चुरचुराहट न करने के अभिप्राय से वे दोनों सूखे पत्तों पर पदचाप न करने की सावधानी बरत रही थीं। ·····निन्नी झाड़ी में पहले धँस गई।····· खड़े होकर या झुक कर चलने की गुंजाइश न थी। बैठ कर और कहीं लेट कर ही बढ़ा जा सकता था। आदि" (पृष्ठ ५१)

शिकार और पर्यवेक्षण का चोली दामन का साथ है। वर्मा जी शिकार के शौकीन तो हैं ही, इसी नाते उनमें पर्यवेक्षण शक्ति का होना आवश्यक था। शिकार के अवसर पर पशु की गतिविधि का सुन्दर चित्र वे खींचने में सफल हुये हैं। देखिए—"लाखी घायल अरने के खाँद लेती हुई चौकन्नी जा रही थी। एक पत्थर पर उसको खून के छींटे मिले। आगे धार-सी लगी थी। सामने एक नंगा टीला था। टीले पर चढ़ कर उसने इधर-उधर आँख पसारी। एक छोटी सी झाड़ी के बगल में घायल अरना बैठा झीम ले रहा था। लाखी ने तरकस में से बाँस का बड़ा और पैनी नोक वाला तीर निकालकर अरने की गर्दन पर भरपूर बल के साथ छोड़ा। तीर थोड़ा सा छिद कर रह गया। अरना उठा और उसने लाखी के देखते ही आग बरसाई। पूँछ उठाकर उसकी ओर झपटा। लाखी टीले पर थी। अरने की असमर्थता पर उसे विश्वास था। फिर भी उसने डोरी पर लोहे के तीर को चढ़ा कर पूरे जोर के साथ दोनों आँखों के बीचोंबीच मस्तक पर छोड़ा। तीर अरने के माथे पर खूँटी की तरह जा गड़ा। अरना सिर नीचा करके तीर छुड़ाने की धुन में लग कर खुरियों से भूमि को उखाड़ता गिर गया·····अरने का माथा धीरे-धीरे ढीला पड़ा·····थोड़ी देर में अरने के पैर ढीले पड़ गये।····· अरने ने थोड़ा सा सिर को फड़फड़ाया परन्तु वह खड़ा न हो सका। लाखी ने समझ लिया वह मर रहा है।'

शिकार के सम्बन्ध रखनेवाले अन्य दाँव-पेंच, जैसे मचान से शिकार, पैदल शिकार और हाँका आदि का वर्णन मृगनयनी में मिलता है। इन सबसे वर्मा जी के शिकारी जीवन का परिचय मिलता है।

यह है वर्मा जी का व्यक्तित्व। श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ (पुस्तक—हमारे लेखक) ने वर्माजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है—"वर्मा जी कई भाषाओं और कई विषयों के ज्ञाता हैं। इतिहास के वह

बड़े प्रेमी हैं। इसके अतिरिक्त पुरातत्त्वविज्ञान, मनोविज्ञान, साहित्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला में उनकी विशेष रुचि है। संगीत में सितार, और खेलों में शिकार उनका व्यसन है। अध्ययनशील और चिंतक होने के नाते वह एकांतप्रिय हैं। संसार की दौड़-धूप से कोसों दूर रहते हैं। उनमें आत्मप्रचार की भावना भी नहीं है। उनका अधिक समय अब भी एकांत में ही व्यतीत होता है और तभी वह कुछ लिख पाते हैं। स्वभाव से वह सरल और अकृतिम हैं। वह मानवता के साधक हैं। उनकी मानवता की साधना ही उनकी विभिन्न कृतियों से झलकती है।" प्रोफेसर नगेन्द्र ने 'हिन्दी उपन्यास' नामक लेख में वर्मा जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुये लिखा है कि बुन्देलखंड के नदी नाले, झीलें और पर्वतवेष्टित शस्यश्यामल खेत उनकी प्रेरणा के कारण हैं। उन्हें हिस्टारिमल रोमांस पसंद है। इसी हिस्टारिकल रोमांस के वातावरण में बचपन से ही वे एक वीर जाति के जीवन का खंडहर देखते आये हैं। उसी की छाप उनके उपन्यासों पर पड़ी है।

हमने जिन रेखाओं के आधार पर वर्मा जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है, उसकी पूरी झाँकी 'मृगनयनी' में देखने को मिलती है। यह उपन्यास 'व्यक्तित्व की कसौटी' पर कसने पर वर्मा जी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा, अधिक बहुमूल्य प्रतीत होता है।

मृगनयनी के लेखक का 'मानव-स्वभाव' का ज्ञान

उपन्यास लेखक को मानव-स्वभाव का पूरा ज्ञान होना चाहिये। यदि वह देश और काल के अनुसार बदलते हुए मनुष्य के स्वभाव को नहीं समझता, तो उसके पात्र निर्जीव रहेंगे और चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता न आ सकेगी। वर्मा जी में प्रतिभा है और वे मनुष्य के हृदय को पढ़ सकने में समर्थ हैं।

यों तो उन्हें मानव-स्वभाव का ज्ञान है ही परन्तु उनकी विशेष प्रतिभा, स्त्रियों के स्वभाव के विश्लेषण में परिलक्षित होती है। पहले हम इसी पक्ष को लेंगे।

ग्रामीण वातावरण है। राई के रहनेवाले सभी अल्हड़ हैं विशेषकर स्त्रियाँ। ग्रामीण स्त्रियाँ अधिकतर रूढ़िवादिनी हैं। समाज के बंधनों पर उनकी दृष्टि कभी भी उदार नहीं होती। लाखी और अटल एक साथ रहते हैं, दोनों में प्रेम है और दोनों निष्पाप जीवन बिताते हैं परन्तु स्त्रियाँ अफवाह उड़ाने में बड़ी पटु होती हैं। उन्होंने चारों ओर यह अपवाद फैला दिया कि लाखी को गर्भ है। दोनों का निकलना कठिन हो जाता है। साथ ही वे साहसपूर्वक लाखी और अटल के सामने कुछ नहीं कह सकतीं उन्हें राजा मानसिंह से डर है। दूसरी ओर निन्नी का व्याह राजा मानसिंह से होने पर वे चापलूसी करने के लिये अटल के घर आती हैं और आशीर्वाद देती हैं—"अहा हा! कैसा भाग जागा!! भगवान सबका भला करें! गाँव का नाम अमर कर दिया। जैसा रूप पाया, वैसा ही राजा मिला। राज वो ढूढ़ने पर भी ऐसा रूप संसार में नहीं मिलता।" निन्नी का विवाह होने पर, आशा हो जाती है कि लाखी का विवाह अटल से हो जायगा और गाँववाले विरोध न करेंगे। स्त्रियाँ लाखी के संबंध में एक दूसरी बात फैला देती हैं—"एक कहती थी निपूती निन्नी रानी बनकर पान चबायेगी और लाखी चेरी बनकर निन्नी की पीक गदेली पर लेगी और राजा की सेज बिछाया करेगी आदि।" निन्नी को क्रोध आ जाता है, और वह ऐसी बात कहनेवाली स्त्री का नाम पूछती है, तो एक स्त्री कहती है, 'बता दूँगी कभी, अभी नहीं। गाँव में रहना जो है। वे सब सुन लेंगी, तो मेरा मुँह काला कर दिया जायगा और जाति में से निकाल दी जाऊँगी। आदि" (पृष्ठ २००) इससे लाखी के आत्मसम्मान को धक्का लगना स्वाभाविक था। स्त्रियाँ ही अटल

और लाखी के विवाह का विरोध करती है। उन्हें निर्लज्ज और कलजुगी कहकर (पृष्ठ ११७) अपमान करती हैं परन्तु मृगनयनी और मानसिंह के विवाह को, यद्यपि वे लोग तोमर और गूजर थे, उपयुक्त बताती हैं। सच है, समरथ को नहिं दोस गुसाईं। ग्रामीण स्त्रियों के स्वभाव का परिचय इन प्रसंगों में भली भाँति मिल जाता है।

भारत के गाँवों में शहरी सभ्यता की पहुँच नहीं। वहाँ जीवन की आवश्यकतायें थोड़ी हैं। राई गाँव में भी लोग केवल कपड़े से तन ढक लेते हैं और खाने के लिये ज्वार या पशुओं का मांस। राजनीति, धर्म, दर्शन और शिक्षा यहाँ से कोसों दूर है। फलतः स्त्रियाँ केवल रूढ़ियों और परम्पराओं को ही मान्यता देती हैं। ऐसी परिस्थितियों में पली हुई निन्नी और लाखी, दो भोली और अल्हड़ युवतियों के रूप में हमारे सामने आती है। होली है दोनों एक दूसरे से उलझती हैं, रंग और कीचड़ उछालती हैं। पुजारी और अटल को लेकर हास-परिहास करती हैं। निन्नी और लाखी में परस्पर इतना स्नेह है कि यह जानते हुये कि लाखी अहीर है, निन्नी उसके हाथ का बना हुआ खा लेती है। दोनों हमेशा एक साथ रहती है। उनके हास-परिहास का विषय लाखी और अटल का भावी संबंध है। उनकी बातचीत का विषय केवल शिकार है। नगर के वातावरण में 'विचार शक्ति' दृढ़ होती है, दोनों युवतियों का उस जगत् से सम्पर्क न था। ग्राम-वातावरण में भावपक्ष सबल होता है—सच्चा स्नेह, सहकारिता, हृष्टपुष्ट शरीर, लज्जा, कोमलता और सादगी यह सब गाँवों में ही देखने को मिलते हैं। आप, लाखी और निन्नी में यही गुण पायेंगे। दोनों जरा-सी बात पर लड़ जाती हैं परन्तु दूसरे ही क्षण उनका क्रोध मोम की तरह गल कर बह जाता है। एक नमूना देखिये:—

निन्नी दौड़ कर उससे लिपटने को हुई । लाखी हटी। बोली, 'छोड़ दो मुझको यहीं और अपना सुअर उठा ले जाओ। तुमको गूजर होने का बड़ा अभिमान है,तो हमको भी अहीर होने का कम मान नहीं। निन्नी नहीं मानी। जबरदस्ती लोहे का तीर उसके हाथ में पकड़ा दिया।

'हम तुम दोनो निर्धन हैं। दोनों एक से हैं। तुम्हारी सम्पदा तुम्हारी माँ है, मेरी मेरा भाई। तुम मेरी और उनकी होकर रहोगी, बुरा न मानो लाखी।'

अभी दोनों एक दूसरे पर व्यंग्य कर रही थीं। दूसरे क्षण के परिहास करने लगती हैं:—

"और यह भी कहा होगा कि तुम ग्वालियर के राजा की रानी होने वाली हो।"

"होवे कोई अभागिन। राई नदी और खुले जंगल को छोड़ कर मैं ग्वालियर के किले में कैद होने को जाऊँगी। बावली हुई है क्या ?

"और तुम बावली हुई हो क्या जो मैं तुम्हारे घर की लौंडी-चेरी बनने आऊँगी ?"

इसके बाद यह परिहास और भी गहरा हो उठता है:—

निन्नी उससे लिपट गई। लाखो ने प्रतिरोध नहीं किया। बोली, 'सच सच बतला तेरे और भैया के बीच में कभी कुछ ऐसी वैसी बात हुई है न ?'

लाखी ने मुंह छिपा कर कहा, 'ऐसी वैसी बात क्या ?'

'कोई प्यार की बात ? जैसी कथा कहानी में सुनते आते हैं ?'

'हट'

'ऐं हैं, हैं, ! हट वट नहीं, ठीक बतला।'

'हमारी तुम्हारी जात में ऐसा कैसे हो सकता है ?'

'क्यों नहीं हो सकता ? भैय्या कहते थे हो सकता है।'

'गाँव वाले क्या कहेंगे ?'

'गाँव वाले कहा सुनी करेंगे तो नदी ऊपर किसी दूसरे डूँगर जंगल में चले जायेंगे परन्तु, तुमको अपनी भौजी बनाने की साध को तो पूरा

करके ही छोड़ूंगी।'

लाखी दूसरी ओर मुँह करके लाजों में डूबने उतराने लगी।

शहरों में पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिये 'प्रेम' पर विचार प्रकट करना और प्रेम सम्बंध की सखियों में चर्चा करना साधारण बात है। गाँव में यह गोपनीय विषय समझा जाता है। एकांत में भी दो सखियाँ इस विषय पर खुलकर बात नहीं कर सकतीं। उपन्यास भर में हास-परिहास, क्रोध-व्यंग्य, अनुनय-विनय के दृश्य जगह-जगह मिलते हैं (पृष्ठ ८३ से ८७ तक) जिनसे दो ग्रामीण युवतियों के स्वभाव का पूरा पता चल जाता है।

परिस्थितियों के बदलते ही मनुष्य का स्वभाव कुछ न कुछ अवश्य बदल जाता है। निन्नी जब राई गाँव से जाकर ग्वालियर की रानी बन बैठती है, तो उसकी अल्हड़ता और विचार शून्यता का स्थान प्रगल्भता और विद्वत्ता ले लेती है। वह बुद्धिमती थी ही, थोड़े ही दिनों में वह संगीत, नृत्य और चित्रकला में निपुण हो जाती है। जिस समय मृगनयनी, मानसिंह से बातचीत करते समय शांति और युद्ध के बीच समन्वय (पृष्ठ ३४७) स्थापित करने पर जोर देती है और प्रेम के संयम का महत्व जिस युक्तिपूर्ण ढंग से बताती है, हम चकित रह जाते हैं और सोचने लगते हैं कि यह मृगनयनी क्या वही राई वाली अल्हड़ निन्नी है? परिस्थिति और स्वभाव-परिवर्तन के ज्ञान का वर्मा जी ने पूर्ण परिचय ऐसे प्रसंगों में दिया है।

निन्नी का विवाह राजा मानसिंह से हो गया। वह राई गाँव को छोड़कर चल दी। नववधू के रूप में मृगनयनी के हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों का विश्लेषण बड़ा मनोवैज्ञानिक है। एक ओर भावी सुखमय जीवन की कल्पना से उत्पन्न उल्लास और दूसरी ओर लाखी और अटल के वियोग का दुख, तीसरी ओर नये प्रकार के जीवन के अनुकूल अपने को वह कैसे बना

सकेगी, इसका असमंजस—इन तीन प्रकार के विरोधी भावों के बीच में पड़ी निन्नी की मनोदशा देखने योग्य है:—

"मृगनयनी राजसी सवारी में बैठी जा रही थी। जब तक साँक नदी और सुपरिचित डाँग-डूँगर दिखलाई पड़े, वह आँसू पोंछ पोंछ कर देखती रही.........."

"ग्वालियर पहुँचते ही उसको स्वागत के प्रदर्शनों का तूफान चकित करने लगा। बाजे, गायन, नगर की सजधज, फूलों और धानों की बरसात तोरण वन्दनवारों की झुरमुटें, आरतियाँ, जयजयकार के हल्ले ने तो उसको हैरान ही कर दिया।"

"ऊपर पहुंचकर मृगनयनी ने किले की पहाड़ी के तलवर्ती फैले हुये मैदान को लालसा के साथ देखा......एक पहाड़ी की उपत्यका से धुंये की ऊँची पतली रेखायें छा रही थीं......गाँव में रोटी बनाने की तैय्यारी हो रही होगी। गाय के लिए बच्छा रँभा रहा होगा आदि।"

सारा २६ वाँ परिच्छेद मृगनयनी के मनोभावों का परिचय देता है। दुख, सुख और परेशानी का अभूतपूर्व सम्मिश्रण यहाँ मिलता है। कहीं पर तो शकुंतला की याद आ जाती है।

एक ओर मृगनयनी और लाखी के चरित्र द्वारा हमें नारी के सात्विक भावों का परिचय मिलता है और दूसरी ओर सुमन मोहिनी के द्वारा नारी के कुत्सित रूप के दर्शन होते हैं, जहाँ ईर्ष्या द्वेष और स्वार्थ की प्रधानता है। रानी सुमन मोहिनी, मृगनयनी को विष देने और चोरी लगाने तक में नहीं हिचकती। उसकी स्वार्थपरता यहाँ तक बढ़ जाती है कि वह कला के द्वारा गूजरी रानी मृगनयनी को औषधि दिलाकर बाँझ बना देना चाहती है। पिल्ली और नावकिन की निर्लज्जता और नटों की स्त्रियों की चालाकी के वर्णन स्वाभाविक हैं। स्त्रियों का आभूषण और वस्त्र प्रेम प्रसिद्ध ही है। लाखी को इनके प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक था फिर भी उसमें आत्म-सम्मान है। वह अपने सुख के लिए

न तो ग्वालियर जाती है और न माँडू। पिल्ली को रस्सी काटकर किले के प्राचीर से गिरा देने में वह नारी स्वभाव का परिचय देती है।

वर्मा जी का स्त्रियों के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान है। उनके मनोभावों को समझने में उन्होंने सफलता पाई है। मानव स्वभाव और परिस्थितियों के बीच स्वभाव में प्रतिक्रिया का उन्हें ज्ञान है। बैजू बावरा कलाकार है, अतः उसमें तन्मयता, भोलापन और ससार के प्रति विराग है। अटल ग्रामीण युवक है, उसमें छल नहीं, सरलता है। वह एक बार लाखी का हाथ पकड़ लेता है, तो आजन्म उसका निर्वाह करता है। बोधन रूढ़िवादी ब्राह्मण है, अतः वह शास्त्रों पर इतना अधिक विश्वास करता है कि उनके विरुद्ध वह उचित और तर्क-सम्मत बात भी नहीं मानता। मृगनयनी के पात्रों का चरित्र चित्र वर्मा जी के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक है। साथ ही इतना मानना पड़ेगा कि प्रेमचंद की तुलना में वर्मा जी का यह ज्ञान सीमित भी है। कारण स्पष्ट है, वर्मा जी को जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का उतना व्यापक अनुभव नहीं है जितना प्रेमचंद जी को था। वे स्वयं तटस्थ रह कर कला की उपासना में रत रहते हैं। साहित्य-संगीत ही उनका जीवन है। इसीलिये जीवन का गहरा संघर्ष उनमें देखने को नहीं मिलता। वे प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं, इसलिये अनुभव का क्षेत्र सीमित होने पर भी 'जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि' के सिद्धान्त के अनुसार मनोभावों को ताड़ लेने में समर्थ हैं। यही वर्मा जी की सफलता है।

मृगनयनी में देश-काल की छाप

लेखक या कवि की कृति पर उसके समय में प्रचलित विचार-धाराओं और समस्याओं की छाप अवश्य ही पड़ती है। एक श्रेष्ठ कलाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उसकी रचनाओं के

द्वारा युग अपनी कथा कहता है। 'मृगनयनी' में वर्तमान कालीन में विचारधाराओं की छाप स्पष्ट है।

वर्तमान काल में भारत एक बड़ी क्रांति के बीच होकर गुज़र रहा है। यह क्रांति बहुगुणी है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में क्रांति प्रारम्भ हो गई है। इस क्रांति की झलक हमें 'मृगनयनी' में देखने को मिलती है।

भारतीय जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है अलगाव अर्थात्, संसार में कहीं भी क्रांति हो रही हो परन्तु भारतवर्ष सब ओर से आँखें बन्द किये हुये तटस्थ रहता है। अंगरेजों के आने के बाद, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से हमारा सम्पर्क हुआ और यहाँ क्रांति का सूत्रपात हुआ परन्तु परिवर्तन बहुत अधिक नहीं हुये। नगरों में मनुष्य के जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ परन्तु गाँवों में जीवन का क्रम उसी मार्ग पर चल रहा है, जिस पर अब से सैकड़ों वर्ष पहले था। भारतीय समाज की नींव वर्ण-व्यवस्था पर आधारित थी और वह बिगड़ कर कालांतर में जाति प्रथा के रूप में प्रचलित हो गई। भारतीय समाज अब भी उसी प्रथा को अपनाये हुये है। शास्त्रकारों ने प्रथाओं और परम्पराओं की हद बनाने के लिये, पुराणों और वेदों की दुहाई देकर उन्हें ईश्वर कृत बना दिया। जो प्रथायें ईश्वर द्वारा बनाई हैं, उनमें भूल या कमी हो ही नहीं सकती। मनुष्य को उस पर आँख बन्द करके चलते रहना चाहिये। भारतीय समाज इसी आदेश का अब तक पालन कर रहा है। शास्त्रकारों की युक्ति से इतना लाभ अवश्य हुआ कि भारतीय समाज में क्रांति, नहीं आसकी परन्तु ईश्वर और धर्म का सहारा पाकर मनुष्य ने सोचना बंद कर दिया और उसका विवेक नष्ट हो गया। परिवर्तन के अनुकूल अपने को बना लेने की शक्ति यहाँ के मनुष्य में जाती रही। भारत के समाज पर अब भी रूढ़ि का शासन है। भारतीय समाज का यह चित्र और उसके सुधार की समस्या 'मृगनयनी' में देखने को मिलती है।

राई गाँव के निवासी और बोधन पुजारी सदियों के बंधन से जकड़े हुये हैं। गाँव अकाल पीड़ित है, अन्न पैदा हुआ परन्तु वह किसानों के घर नहीं जाता। पुजारी जी कहते हैं "शास्त्र का वचन कभी न भूलो; छठवाँ भाग राजा का होता है, बीसवाँ देवता का, तीसवाँ ब्राह्मण का। उसके देने में आनाकानी करने से यह लोक तो बिगड़ेगा ही परलोक से भी हाथ धो बैठोगे।" आज भी किसान भूखे रह कर जमींदार और देवी देवताओं को प्रसन्न करने में धर्म की मर्यादा समझता है। समाज में ब्राह्मणों का शासन है। बिना उनकी सहमति के कोई भी सामाजिक कार्य, विशेष कर विवाह, वैध नहीं कहला सकता। ब्राह्मण समाज और शास्त्र के ठेकेदार हैं। बोधन ने राजा मानसिंह और मृगनयनी का विवाह करा दिया, यद्यपि वे विभिन्न जाति के थे। गाँव वालों के लिये वह विवाह मान्य था किसी ने चूँ तक न की परन्तु अटल और लाखी का विवाह वही बोधन नहीं कराता क्योंकि एक गूजर है और दूसरा अहीर। दोनों में नैसर्गिक प्रेम है परन्तु बोधन के शास्त्र यहाँ पर चुप हैं। सबल के आगे शास्त्र की नहीं चलती परन्तु निर्बल पर डंडे का राज्य है। बोधन दोनों का ब्याह नहीं कराता, राजा मानसिंह का कहना भी नहीं मानता। लाखी और अटल विवाह कर लेते हैं। गाँव वाले उनका बहिष्कार कर देते हैं। उनका कहना है "सो क्या हुआ! राजा चाहे जिस जाति की लड़की के साथ ब्याह करे, चाहे जितनी स्त्रियों को घर में डाल ले, वह कर सकता है बड़े बड़े लोग कर सकते करते आये है। पर यह अटल! राम! राम!! राम!!!" अटल सबको लड्डू व पूरी का लालच दिखाता है पर व्यर्थ। गाँव में प्रचलित जाति-व्यवस्था का यह वर्तमान चित्र है।

समाज की इस व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ होगई है। इस प्रतिक्रिया का रूप अटल और लाखी की दृढ़ता में मिलता है। नवयुवकों ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया है।

गाँवों में भी कहीं-कहीं ऐसे उदाहरण मिलते हैं। समाज अटल का तिरस्कार करता है परन्तु अटल और लाखी उसका सामना करने के लिए तैय्यार हो जाते हैं, सिर नहीं झुकाते। वह पवित्र मन से देवताओं को साक्षी करके लाखी से विवाह कर लेता है। उसकी दृढ़ता में नवयुवक का उत्साह है—"अब सदा के लिये तुम मेरी हुई, जाहे जाति मुझको रक्खे, चाहे निकाले। चाहे गाँव मुझको पत्थर मारकर गाँव से भगादे, मेरा तुम्हारा सम्बन्ध कभी न टूटेगा। बोलो, तुम मेरी हुई ?" लाखी में आधुनिक युवती का उत्साह और विद्रोह भावना है। वह कहती है—"राजा ने भी इसी तरह बाहर जात ब्याह किया है। पर वह राजा है और हम लोग गरीब। राजा ने किया तो पाप नहीं हुआ, हमने किया तो पाप बन गया !" लाखी और अटल समाज से लड़ते हैं परन्तु हिन्दू समाज अभी निर्बल नहीं हुआ है। धर्म और समाज के सबसे ज्यादा अनुयायी वही लोग है, जो इनके बीच—चक्की के दो पाटों के बीच—पिसते हैं, अर्थात् वही गरीब और नीची जाति के लोग शास्त्रों पर आँख मूंद कर विश्वास करते हैं। नरवर लाखी की वीरता के कारण बच गया। वहाँ के निवासी लाखी का आदर करने लगते हैं परन्तु ज्योंही उन्हें लाखी और अटल के अवध सम्बन्ध का संदेह होता है, वे लोग उनका अनादर करने लगते हैं। लाखी के मुँह पर ही एक स्त्री कह देती है—"राम ! राम !! मुझको क्या करना है। मैंने तो बस्ती की बात सुनाई। तुम्हें यह ठाकुर रक्खे हैं, सो रक्खे रहें हमको क्या गरज पड़ी।" "रक्खे नहीं हैं, बाई, ब्याहता है यह मेरी ! भाँवर फेरे वाली ब्याहता।" अटल ने कहा। स्त्री चलने को हुई। बिरबिराई—"भगवान, कैसा घोर कलयुग आ गया है। गूजर और अहीर का ब्याह !"

कहते हैं अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। समाज के सामने दो एक व्यक्तियों की क्या हस्ती है। अटल और लाखी

समाज से लड़ते हैं परन्तु उन पर ठोकर ही ठोकर पड़ती है। वे कभी नहीं सुख पाते। आज भी समाज में ऐसे नवयुवक और नवयुवतियों की ऐसी ही दशा है। समाज के विरुद्ध ऐसे व्यक्तियों को यदि दो चार साहसी और सुधारवादी व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त होता है तो उससे कुछ लाभ नहीं होता। राजा मानसिंह अटल और लाखी को समाज में सम्मान प्राप्त नहीं करा पाते। बोधन उनका कहना नहीं मानता, उनकी आठों रानियाँ लाखी का अपमान करती है और साधारण जन समाज भी उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखता। जातिभेद और विवाह सम्बन्ध में जलने वाले वर्तमानकालीन आन्दोलन का अच्छा मित्र इन्हीं प्रसंगों में मिलता है।

सामाजिक बन्धनों से सबसे अधिक कष्ट स्त्रियों को होता है। विवाह के समय कुल और गोत्र की उच्चता, प्रमुख मानी जाती है, स्त्री के गुणों का उनके मुकाबले में कोई सम्मान नहीं। कला एक ऐसी नवयुवती है जो गुणवती है परन्तु वर्णसंकर होने के कारण उसका विवाह नहीं होता। "बैजू के घर के सामने एक चित्रकार की लड़की रहती थी। वह चित्रकारी से बढ़ कर संगीत में निपुण थी। वर्ण संकर होने के कारण युवावस्था प्राप्त हो जाने पर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। रूपवती थी,..... पिता ने मरते समय तक विवाह की चर्चा की; कोई भी विवाह करने को तैयार नहीं हुआ, तो उसने भी विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर ली।" ऐसी कितनी ही अभागिनें हिन्दू समाज में हैं। उनकी दशा कला से मिलती-जुलती है।

अब देश की आर्थिक स्थिति को लीजिये। पिछले महायुद्ध ने देश की आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला है। जीवनोपयोगी वस्तुओं का, विशेषकर खाद्यान्नों का अभाव हो गया है। साधारण और गरीब जनता को उनका मिलना सुलभ नहीं सेठ, साहूकारों और पूँजीपतियों ने माल रोक कर मनमाने भावों

में उसे बेचना आरम्भ कर दिया। सरकार ने कन्ट्रोल-पद्धति चालू की और वितरण का काम हाथ में ले लिया। उसे पूँजीपतियों और व्यापारियों के हथकंडों से असंतोष है परन्तु वे वर्तमान समय में न टल सकने वाली बुराई के रूप में (Unavoiable Evil) मौजूद हैं। मृगनयनी में इस वर्तमान समस्या की छाप भी आगई है। नरवर पर गयासुद्दीन ने आक्रमण कर दिया। क़िला घिर गया। ऐसी स्थिति में वहाँ वही हुआ जो आजकल देश में हो रहा है। "नगर की जन संख्या थोड़ी सी बढ़ गई परन्तु इतनी नहीं (यह निष्कांतों की समस्या थी।) कि अन्न के लिये कोई विशेष चिंता करनी पड़े। फिर भी दो दिन के भीतर ही अन्न का भाव चढ़ गया। दुगने मोल बिकने लगा। व्यापारी माथे को ठोक-ठोक कर, गदेन हिला-हिला कर कहते कि थे सब व्यौपार चौपट होगया। उनका मन भीतर ही भीतर फुसफुसाता था, चलता रहें घेरा दो चार महीने, तो एक एक के सौ सौ डूँड़ पर डले हैं। और अगर शत्रु जीत गया तो अन्न वस्त्र इत्यादि उसको भी चाहिये, बहुत सस्ता भी खरीदेगा, तो दुगने में तो कसर लगने की नहीं, नगरपाल और किलेदार के पास शिकायत पहुँची। उन्होंने समाधान किया, लड़ाई के युग में ऐसा ही हो जाता है, धीरज से काम लो, ज्यादा मजदूरी करके कमाओ-खाओ। वे दोनों और शासक वर्ग साचते थे, सेठ साहूकारों को नाराज किया नहीं कि भूखों मरने की नौबत आई।"

वर्तमान काल में मजदूरों की दशा कितनी शोचनीय है, यह तो उनके फटे पुराने कपड़े, घर की दशा, दुबला शरीर और अन्नभाव ही बता सकता है। 'मृगनयनी' में वर्मा जी ने, ग्वालियर नगर के छोर पर स्थिति एक झोंपड़ी का चित्र खींचा है, जिससे मजदूर वर्ग की दशा का सच्चा परिचय मिलता है। देखिये:—

"नगर के छोर पर एक झोंपड़ी में दिया टिमटिमा रहा था, जिसका तेल समाप्त होने को था; फिर बत्ती घड़ी आधी घड़ी

डिगमिगाते, डिगमिगाते सुन्न पड़ जाती थी। झोपड़ी के भीतर एक कोने में आग दहक रही थी। ठंड के मारे सिकुड़ी हुई, फटी मैली कुचैली कथरी में ढेर सी बनी हुई एक स्त्री आग के पास पड़ी पड़ी कराह रही थी। कई बच्चे उसके निकट बैठे पड़े रो रहे थे और उतरती अवस्था का एक पुरुष दिये के टिमटिमाते हुये प्रकाश में, सूप में रक्खे हुये अनाज को बीन रहा था।"

मजदूर वर्ग की यही हालत है आज कल। घर में खाना नहीं। बच्चों की संख्या बढ़ती जाती है। माँ का स्वास्थ्य गिरा हुआ, घर की दुर्दशा—यही मजदूरों का हाल है। भूख और रोग ने उनके झोपड़ों में अपना घर बना रक्खा है। दिन भर का थका मजदूर रात में भी चैन से सो नहीं सकता। फिर भी मजदूरों का अपना मूल्य ज्ञात हो रहा है, वे परिश्रम का महत्व समझने लगे हैं गरीब जरूर हैं पर वे अपने को भिखारी नहीं समझते। राजा मानसिंह की ओर से सदावर्त बँटता है, पर वह मजदूर उसे ग्रहण नहीं करता। वह स्पष्ट कहता है—'वाह! हम क्या भिखारी हैं? सदाबर्त पर तो कोढ़ी, अपाहिज, साधू, वैरागी जाते हैं। हम तो मजदूर हैं।'

आधुनिक भारतीय विचारधारा की सबसे बड़ी विशेषता है, राष्ट्रीय भावना का उदय! भारत माँ के लिए किस लेखक और कवि का हृदय नहीं उमड़ पड़ता। वर्मा जी भी भारत राष्ट्र के भक्त हैं, उन्हें अपनी जन्मभूमि के कण-कण से प्रेम है और भारतीय इतिहास के अतीत पर उन्हें विशेष गर्व है। वर्तमान काल में बहती हुई राष्ट्र प्रेम की हवा से वे बचे नहीं, यद्यपि उन्हें राजनीति से प्रेम नहीं है और वे यद्यपि एकान्त प्रेमी और कला के पुजारी हैं। उनके राष्ट्र प्रेम का नमूना देखिये:—

"भारत के पहाड़, जंगल, नदी, नाले, विस्तृत क्षेत्र और लम्बे चौड़े अंतर अनगिनत छोटे-बड़े राज्यों की जन संख्या और जनपद के खंडों की भिन्नता को बढ़ाने में सदा से सहायक रहे हैं, परंतु एक छोर के

विचार और मतको दूसरे छोर तक पहुँचाने में न तो वे और न उनके उत्पादन—अनेक छोटे-बड़े राज्य—रजवाड़े और भिन्न भिन्न जनपदों के सीमाबद्ध संकुचित खंड—कभी बाधक हो पाये हैं। शंकर उत्पन्न हुये सुदूर दक्षिण में और अपने विरोधी को हराने तथा अपने मत के प्रचार के लिये पहुँच गये काश्मीर। चैतन्य हुये दूरवर्ती बंगाल में और उनके मत के प्रचारकों ने अपना संस्थान बनाया वृन्दावन में !! तक्षशिला का ब्राह्मण काँची के विद्यालय में और काँची का काश्मीर और काशी में !! गंगा और गोदावरी का नाम उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम के छोर-छोर तक घर—घर में, जंगल में, पर्वत की कन्दराओं में, मानों हिमालय विंध्याचल, सह्याद्रि सब एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं।"

राष्ट्रीयता ने समस्त भारत को एकता के सूत्र में पिरो दिया है। वर्मा जी ने भी भारत को एक राष्ट्र के रूप में ही समझा है।

भारत की राष्ट्रीयता के लिये सबसे बड़ा खतरा साम्प्रदायिकता—हिन्दू और मुस्लिम विरोध से हो रहा है। वर्मा जी का इस समस्या के प्रति दृष्टिकोण अनोखा है। मृगनयनी में मुसलमानों की धर्मान्धता के उदाहरण मिलते हैं, परन्तु वर्मा जी ने स्थल स्थल पर यह दिखाया है कि हिन्दू मुस्लिम संस्कृति का समन्वय एक न एक दिन होना अनिवार्य है। बहुत से मुसलमान अब यह तथ्य समझने लगे हैं। गयासुद्दीन इन विचारों का प्रतिनिधि है। वह स्पष्ट कहता है कि हिन्दू कारीगरों की छाप मुसलमानी-कला पर अवश्य पड़ेगी। मुसलमानों को एक न एक दिन हिन्दू-कला का महत्व समझना ही पड़ेगा। स्वयं महमूद बघर्रा कहता है—"उन मन्दिरों को मैंने भी देखा था, बुतों को भी। कुछ भी हो, मन्दिर थे खूबसूरत। बुतों को तोड़ डालना ही काफी था। पत्थर को जान देने के फन में हिन्दुओं ने जिस कमाल को हासिल किया है, ताज्जुब होता है। हमारे मुसलमान तो वैसी कारीगरी नहीं कर सकते। उस कारीगरी को जबान में ही

अदा नहीं कर सकते। वैसा करतब दिखलाना तो बहुत दूर की बात है।" यहाँ की जलवायु में इतना असर है कि मनुष्य का हृदय कोमल हो जाता है। एक दिन मुसलमानों की कट्टरता अपने आप जाती रहेगी और सच्ची राष्ट्रीयता भारत में उत्पन्न होगी।

साहित्याकार युग के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता। देश और काल के बीच पलकर उसके विचार विकसित होते हैं और उसका दृष्टिकोण निर्मित होता है। यही कारण है कि वर्मा जैसे एकांत-प्रेमी लेखक पर वर्तमान परिस्थितियों ने अमिट छाप डाली है और वह उनके उपन्यासों में स्पष्ट देखने को मिलती है।

मृगनयनी में लेखक का संदेश

जीवन का उद्देश्य ही, विभिन्न प्रकार की समस्याओं को यथाशक्ति हल करना है। अपने समय की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और हार्दिक समस्याओं से लेखक मुक्त नहीं होता। उन समस्याओं का हल, वह अपने दृष्टिकोण के अनुसार ढूँढ़ता है। वर्मा जी ने अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से इस सम्बन्ध में, अपनी रुचि के अनुसार कुछ न कुछ कहा ही है।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अनेक मत-मतान्तर हैं। एक मत वाला अपने को दूसरे मत के अनुयायी से श्रेष्ठ समझता है। अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिये वह तर्क करता है। कोरे सिद्धांतवाद के पीछे कर्म को वह भूल जाता है। राजा मानसिंह के द्वारा वर्मा जी ने कहलाया है:—

'ये बैठे-ठाले के वाक्-युद्ध व्यर्थ हैं। कर्म मुख्य है। जो इससे बचना चाहते हैं, वे ही दायें-बायें की पगदंडियाँ ढूँढ़ते हैं।'

"न मैं शास्त्री हूँ और न पंडित। केवल इतना कह सकता हूँ कि लड़िये मत। कुछ काम करिये और आगे की तैय्यारी में लगिये....."

तपस्या के द्वारा कहते हैं, ज्ञान प्राप्त हो सकता है, शान्ति मिल सकती है—मनुष्य अपने मन को वश में कर सकता है। इस संबंध में वर्मा जी का मत दूसरा है:—

"तपस्या बड़ी वस्तु है, परंतु सुनता हूँ कि तपस्या करनेवाले भय और अहंकार के कारण आत्मदमन में लीन हो जाते हैं और इस आत्मदमन को परमपद समझ कर दूसरों को आतंकित करने लगते हैं। जब ऐसे लोगों को इस लोक में गौरव नहीं मिल पाता, तब उस लोक में उतने अधिक गौरव के पाने की आशा पर उनको अचंभा होने लगता है और पागल से हो जाते हैं।"

राजा मानसिंह और मृगनयनी के चरित्रों द्वारा लेखक ने स्पष्टरूप से यह बताने की चेष्टा है कि मनुष्य में उदारता आवश्यक है। रूढ़ियों का बंधन छिन्न-भिन्न करना होगा। समाज सुधार के लिए पहले बड़े लोगों का नेतृत्व करना होगा। राजा और रानी, दोनों ने जाति बंधन का खंडन किया और छुत-पात को मिटाने की लगातार चेष्टा की। राजा मानसिंह ने रूढ़िवादिता के विरुद्ध सदैव युद्ध किया। मुसलमानों के आने के बाद हिंदुओं में भी पर्दे की प्रथा चल चुकी थी। मृगनयनी ने विवाह के पूर्व राजा से वचन ले लिया था कि मैं ग्वालियर में जाकर पर्दा न करूँगी। मृगनयनी में समाज की रूढ़ियों और प्रचलित बुराइयों को नष्ट करने के लिए क्रांति का संदेश वर्मा जी ने दिया है। ❀

विजयजंगम के चरित्र द्वारा लेखक ने 'श्रम' को ही विशेष महत्व दिया है। मृगनयनी विजय के सिद्धांतों में 'श्रम' का संदेश पाती है:—

"मुझको तो विजय जी की बात अच्छी लगती है। वह कहते हैं सबको अपना-अपना आवश्यक काम अपने हाथ से ही करना चाहिए। वह स्वयं ऐसा ही करते हैं उनका कहना है कि इस देश को भिखमंगों और निकम्मों ने डुबोया है।"

❀ जब बोधन कहता है कि क्षत्रिय गो-ब्राह्मण की रक्षा के

स्त्रियों के प्रति वर्मा जी का दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक है। नारी एक प्रेरक शक्ति है। पुरुष को जितना अधिक बल वह दे सकती है, उतना अधिक बल उसे अन्य द्वार से नहीं प्राप्त हो सकता। देखिये:—

"और स्त्रियाँ काहे के लिए हैं? क्या वे वाँछा और कामना की शृंगार मात्र हैं?"

"नहीं, जीवन की प्रेरणा, प्रातःकाल की ऊषा जैसी सजग करने वाली।"

नारी के साहचर्य से मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करे। उसका मूल्य पहचाने—यही संदेश हमें मृगनयनी में मिलता है। नारी का वास्तविक रूप क्या है, वर्मा जी से सुनिये:—

"स्त्री का गौरव, सौंदर्य, महत्व स्थिरता में है, जैसा उस नदी का जो बरसात के मटमैले, तेज प्रवाह के बाद शरद में नीले जलवाली, मंथर गति-गामिनी हो जाती है—दूर से बिल्कुल स्थिर, बहुत पास से प्रगति शालिनी।"

लिये बनाये गये हैं, तो मानसिंह कहते हैं—'बनाये गये हैं और फिर बनाये जा सकेंगे। जनक, महावीर, गौतम बुद्ध कौन थे? राम, कृष्ण, अर्जुन इत्यादि कौन थे?.....शास्त्री, सोचो, इस प्रकार का कट्टर वर्णाश्रम हिन्दुओं की कितनी रक्षा कर सका है? रक्षा के लिए ढाल और तलवार दोनों अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जात-पाँत ढाल का काम तो कर सकी है और कर रही है, परन्तु तलवार का काम न तो हाल के युग में उसने कर पाया है और न कभी कर पायेगी।'

वर्मा जी कट्टर जाति-प्रथा के विरोधी हैं। इस प्रथा ने हिन्दू समाज के विकास को रोक दिया है। इसने मनुष्य के मनोभावों की अवहेलना की है और उसे पशु से भी बदतर बना दिया है। इसलिए इसे नष्ट करने पर उन्होंने बार-बार जोर दिया है।

स्त्रियों के लिये वर्मा जी का यह संदेश है:—

"रानियों को ऐसे समय में वही याद आया, क्योंकि उनकी बाहों ने तीर कमान और तलवार को कभी अपनी सखी नहीं बनाया। पहले की सतियों ने आग और चिता को जितना प्यार किया, उसके बराबर तीर और तलवार के साथ भी करना चाहिये था।"

मृगनयनी स्त्रियों को संघर्षशील बनाने पर जोर देती है। यह ठीक है कि भारतीय स्त्रियों में सहनशक्ति और त्याग है, परन्तु उनमें पुरुषों की भाँति युद्ध करने की शक्ति भी होना चाहिये। वह कहती है:—

"·····रानियाँ तो पर्दे में मुँह छिपाये बैठी रहती हैं। सुनती तो यही आई हूँ, परन्तु क्या उनके हाथ पैर इतने निकम्मे होते होंगे कि अपने ऊपर आँख और हाथ डालने वाले पुरुष को घूंसे से धरती न सुंघा सके? कैसी स्त्रियाँ होंगी ये! खाने को इतना और ऐसा अच्छा मिलते हुये भी मन उनके ऐसे मरियल!"

स्त्रियों के जीवन में संयम का महत्व है। भोग-विलास में पड़कर स्त्रियाँ अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य नष्ट कर बैठती हैं। विवाह के बाद मृगनयनी जो कुछ मानसिंह से कहती है, वही एक आदर्श नारी को कहना चाहिये:—

"नियम संयम से रहिये और मुझको रहने दीजिये। मैं चाहती हूँ कि उन गुणों के साथ मेरी देह में भी वही बल बना रहे, जिसको राई से लेकर आई हूँ।"

प्रेम के लिये संयम अत्यधिक आवश्यक है। शरीर और मन की स्वच्छता के साथ ही प्रेम स्थायी हो सकता है। मृगनयनी के जीवन से यही संदेश हमें मिलता है। राजा मानसिंह स्वयं उसकी प्रशंसा करते हुये कहते हैं:—"तुम संयम से प्रेम को अचल बनाती हो और मैं अपने विकार से उसको चंचल कर देता हूँ। संयम के आधार वाला प्रेम ही आगे टिके रहने की सामर्थता रखता है।"

कला के प्रति वर्मा जी का दृष्टिकोण नवीन और प्रगतिवादी है। उन पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है। कला के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए लेनिन ने एक स्थल पर कहा है कि सच्ची कला वह है जो जन-साधारण के लिये उपयोगी हो। उसकी उपयोगिता धन-प्राप्ति के अर्थ में न ली जानी चाहिये। कला की उपयोगिता इस बात में है कि वह जीवन की प्रेरक शक्ति है। 'कला कला के लिए'—का सिद्धांत इसलिये ठीक नहीं कि यह मनुष्य को अकर्मण्य बना देता है। मनुष्य उपयोग की ओर अधिक झुक जाता है। वह सौन्दर्योपासना में रत होकर अपने कर्तव्य को भुला देता है। कला का यह पहलू हानिकारक है। वर्मा जी इस प्रकार की कला के विरोधी हैं। इस सम्बन्ध में उनका निश्चित संदेश विजय शब्दों में सुनियेः—

"चाहता तो हूँ कि हम सब और आगे आनेवाले लोग भी उसको देखकर आल्हादित हों, गाने के लिए लहरा उठें और उस लहर से कर्म बनने की स्फूर्ति और शक्ति को पाकर जीवन को अपने श्रम से भर दें।"

कला का उद्देश्य स्फूर्ति पैदा करता है। उसका उद्देश्य यह कभी भी नहीं कि मनुष्य ब्रह्मानंद में लीन होकर विरागी बन जाय। संसार की कठोरताओं और संघर्षों से मुंह मोड़ कर कायरों की तरह एकांत तपस्या करने लगे। कला का आनन्द लेते हुये कर्तव्य का भी ध्यान रखना चाहिये। 'कला औरकर्तव्यपालन' के बीच तौल बनाये रखना जीवन चरम लक्ष्य है। 'मृगनयनी' बार बार मानसिंह को यही तथ्य समझाती है। यहाँ तक कि चित्र द्वारा भी वह इसी भाव को प्रकट करती है। नवयुवक को राग-रस-रंग का आनन्द लूटते हुये, युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए, 'मृगनयनी' में लेखक का संदेश यही हैः—

मानसिंह भी मानता है—"सचमुच वह कला क्या जो कर्तव्य

को लँगड़ा कर दे, और, और वह कर्तव्य क्या जो कला का अंगभंग हो जाने दे।"

कला के साथ-साथ युद्ध की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। शाँति के समय ही देश में कला की उन्नति होती है और यह शांति कला द्वारा नहीं, युद्ध द्वारा ही स्थापित की जा सकती है, देश चारों ओर शत्रुओं से घिरा है। अवसर पाते ही वे आक्रमण कर सकते हैं। इसलिये आक्रमणों से बचने के लिए, शस्त्रों की उपासना होनी चाहिए। हाँ, कला की ओर से उदासीन न रहना चाहिए। "देश की रक्षा शस्त्र द्वारा हो जाने पर ही शास्त्र का चिंतन हो सकता है।" कला और कर्तव्य के बीच संतुलन करना सम्भव है। मानसिंह कहता है—"कला का अनुशीलन और कर्तव्य का पालन साथ साथ चल सकते हैं। मैं सेना को भी सजाऊँगा और ललित कलाओं की भी उन्नति करूँगा।

—(०)—

प्रेमचंद और बाबू वृंदावनलाल वर्मा की तुलना

प्रेमचंद और वर्मा जी दोनों आधुनिक-युग के श्रेष्ठ उपन्यासकार है। हिंदी के उपन्यास-साहित्य को दोनों ने सींचा है। दोनों में कुछ अंशों तक साम्य है और बहुत कुछ विभिन्नता भी है।

लेखक के अनुभवों का उसके साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। या यों कहिये, उसका साहित्य उसके अनुभवों का संचित कोष है। प्रेमचन्द के उपन्यासों को पढ़ने के बाद स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें जीवन का जितना अधिक व्यापक अनुभव है, उतना वर्मा जी को नहीं। प्रेमचंद जी जीवन की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई और गहराई से पूर्णतया परिचित हैं। उन्हें स्वयं अपने जीवन में बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ा था। इसलिये उन्हें

मानवीय भावों के हर पहलू का ज्ञान है। उनकी पहुँच झोपड़ियों से लेकर राजमहलों तक है। वे अमीरों की चुहलबाजी, उनके भोग-विलास से भी परिचित हैं और दूसरी ओर गरीबों के सदन और उनकी आहों में उन्हें मौन आमन्त्रण मिला है। वे वहीं रम गए हैं। वर्मा जी के उपन्यासों में संघर्षों का अभाव है। उनके अनुभवों में यह गहराई नहीं। 'प्रेम' को छोड़कर अन्य भावों तक उनकी अच्छी पहुँच नहीं है। कारण स्पष्ट है। वर्मा जी का जीवन सुखमय रहा है। कलाकार होने के नाते, वे एकांत तपस्वी हैं। अपनी प्रतिभा के बल पर ही उन भावों को व्यक्त कर सके हैं, जिनका उन्हें अनुभव नहीं। उन्होंने भी मजदूरों की झोपड़ी के भीतर प्रवेश करके देखने की चेष्टा की है परन्तु उनका यह प्रयत्न मानों कल्पना द्वारा या आरामकुर्सी पर बैठकर किया गया हो। प्रेमचंद जी ने 'सूरदास' की या 'सकीना' की झोपड़ी में स्वयं घुस कर उन्हें देखा है और उनसे वे स्वयं मिले हैं। इसलिए उनके वर्णनों में जान आ गई है प्रेमचंद में जीवन विविध रूपों में दिखाई देता है परन्तु वर्मा जी में उसका केवल एक या दो पहलू।

प्रेमचंद जी वर्तमान युग के प्रतिनिधि लेखक हैं। उनके उपन्यासों में, राजनीनि, समाज, धर्म, शिक्षा, साहित्य आदि सभी के चित्र हैं। उन्होंने वर्तमान भारत की राजनैतिक समस्याओं-जैसे भारत की गुलामी, जमींदारी प्रथा नौकरशाही के जुल्म, महाजनों के शोषण आदि का, सामाजिक समस्याओं जैसे, विधवा-विवाह, छूतछात, अशिक्षा, रूढ़िवादिता, पाश्चात्य शिक्षा के कुप्रभाव, वेश्या आदि का समावेश किया है। यही नहीं, उन्होंने इन समस्याओं पर विचार प्रकट करते हुए, अपनी राय दी है और सेवाश्रम, सेवासदन, प्रेमाश्रम, जैसे हल भी ढूँढ़कर सामने रक्खे हैं। उनकी कृतियों में सुधारवाद की गूँज है। कहीं-कहीं पर वे स्वयं प्रचारक के रूप में आ जाते हैं। वे

वर्तमान गाँधीवादी दर्शन के समर्थक हैं, अतः उनके उपन्यासों में सत्याग्रह और असहयोग के नमूने मिलते हैं। प्रेमचंद जी की दृष्टि 'वर्तमान' पर लगी हुई है। उसके विपरीत वर्मा जी भारत के गौरवमय अतीत से उलझे हुये हैं। वे केवल तथ्य की खोज और शोध से संतुष्ट हैं। उनके पात्र ऐतिहासिक है। वे हमें, शताब्दियों पीछे ले जाकर गये-गुजरे जमाने की याद दिलाते हैं। वे प्रचार से दूर हैं। प्रेमचंद जी पाठक को अपना दृष्टिकोण मानने के लिये मजबूर कर देते हैं। इसके लिये वे तर्क, उपदेश और घटनाओं को मोड़कर—सभी का सहारा लेते हैं। वर्मा जी का वर्तमान से कोई संबंध नहीं, इसलिये उन्हें पाठक को किसी समस्या के संबंध में अपने विचार मनवाने की जरूरत नहीं। भूतकाल को सुलझाकर वे सामने रख देते हैं और पाठक को अपनी राय स्वयं बनाने के लिये स्वतंत्र रखते हैं। समस्याओं का विश्लेषण वे तटस्थ रह कर करते हैं। वर्तमान से संबंध न रखने के कारण वे युग के प्रतिनिधि नहीं। हाँ अप्रत्यक्षरूप से वर्तमान का कुछ न कुछ असर लेखक पर रहता ही है, उन पर भी है।

प्रेमचंद जी का हृदय 'गाँव' में है। उन्होंने गाँवों की समस्याओं और उनके सुधार को प्रमुखता दी है यह समस्यायें राष्ट्रीय रूप में ली गई हैं। प्रेमचंद जी के गाँव भारतीय ग्रामीण समाज (Agrarian Society) के प्रतिनिधि हैं। ये समस्यायें सर्वत्र एक-सी पाई जाती हैं। वर्माजी ने भी ग्रामीण संस्कृति का चित्र खींचा है परन्तु उनका उद्देश्य केवल वहाँ के जीवन का चित्र उतारना है, समस्याओं को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। उनकी दृष्टि बुंदेलखंड के गाँवों तक ही सीमित है। यहाँ भी वर्मा जी में गहराई नहीं। 'मृगनयनी' में जहाँ भी ग्रामीण जीवन के दृश्य आये हैं, हमें गाँववालों के सुख-दुख का कोई विशेष आभास नहीं मिलता। राई गाँव पर शत्रुओं का आक्रमण हो चुका है, गाँव उजड़ गया है, खेती-बारी नष्ट हो गई है परन्तु

उन लोगों पर दुख की छाया भी नहीं दिखाई देती। कारण स्पष्ट है, वर्मा जी का दृष्टिकोण शुद्ध ऐतिहासिक है, वे ग्रामीण संस्कृति का चित्र खींच सकते है परन्तु उनकी समस्याओं से वे तटस्थ हैं।

उपन्यास कला की दृष्टि से भी दोनों कलाकारों में विभिन्नता है। प्रेमचंद जी के कथानक वर्तमानकाल की सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं के ऊपर खड़े किये गये है। वर्मा जी ने अपनी कथावस्तु अतीत के इतिहास से चुनी है। प्रेमचंद जी कथा कहने में बड़े चतुर है एक घटना, दूसरी घटना से इस प्रकार कार्य-कारण के संबंध पर जुड़ी हुई है कि कथानक में ऐकत्व है, वर्मा जी के कथानक बिखर हुये हैं और बहुत सी घटनायें तो आवश्यक रूप से जोड़ दी गई है। या तो लेखक का उद्देश्य उपन्यास के कलेवर की वृद्धि करना है, या तत्कालीन स्थिति में, वे घटनायें घटीं, इस लिये उन्हें रखना अनिवार्य था, इसलिये उन्हें स्थान दिया गया। यदि ऐसी बात है, तो वर्मा जी ने कथा की अपेक्षा इतिहास को ऊँचा स्थान दिया है। प्रेमचंद जी को कथा कहने का ढंग मालूम है। पाठक की उत्सुकता को बराबर बनाये रखते हैं। वे घटनाओं को बड़े रहस्यमय ढंग से जन्म दे देते हैं। घटनाओं की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा होती है, मनुष्य की घटनाओं द्वारा नहीं, अर्थात् घटनाओं की सृष्टि मनुष्य करता है, इसका प्रेमचंद जी हमेशा ख्याल रखते हैं। मनुष्य का स्वभाव रहस्यमय होता है, वह अभी कुछ है, दूसरे क्षण कुछ हो जाता है, इसीलिये किसी भी समय कोई घटना घटित हो सकती है। बस, प्रेमचंद जी इन मानसिक परिवर्तनों के आधार पर मौका पाते ही घटनाओं को मोड़ देते हैं। इस पाठक चमत्कृत हो जाता है। उसे आगे आनेवाली घटनाओं का आभास नहीं मिल पाता, इसलिये उसकी जिज्ञासा प्रतिक्षण बनी रहती है।

चरित्र-चित्रण के क्षेत्र में देखा जाय तो मालूम होता है कि प्रेमचंद जी ने पात्रों के शीलगुण निरूपण में विश्लेषणात्मक और अभिनयात्मक दोनों प्रणालियों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त परिस्थितियों के बीच संघर्ष करते हुए पात्रों के सम्बन्ध में पाठक को अपना मत स्थिर करने का अवसर भी उन्होंने दिया है। प्रेमचंद जी पात्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहले ही कह देते है। वे उपन्यासकार के अधिकार का पाठक के सामने आकर कुछ कहने का—उपयोग अवश्य करते हैं। वर्मा जी यहाँ भी तटस्थ हैं। वे पात्रों के सम्बन्ध में शायद ही दो-चार वाक्य कहते हों। प्रायः वे पाठक को, पात्रों के सम्बन्ध में अपनी राय कायम करने के लिए छोड़ देते है। पात्रों के कथोपकथनों और कार्यों द्वारा ही हम वर्मा जी के पात्रों के संबंध में अधिक जान सकते हैं। प्रेमचंद जी के पात्रों में प्रेमचन्द जी का निजी व्यक्तित्व कभी नहीं देखने को मिलता। एक-एक पात्र किसी एक विशिष्ट वर्ग जैसे किसान, मजदूर, सेठ, वेश्या सुधारक और व्यवसायी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक वर्ग की विचारधारा के सम्बन्ध में हम उस पात्र के कार्यों द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मृगनयनी में वर्मा जी ने भी कहीं-कहीं पर ऐसा ही चरित्र-चित्रण किया है। जैसे बोधन ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधि है। साथ ही यह मानना पड़ेगा कि कुछ पात्रों ने स्वयं वर्मा जी के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। राजा मानसिंह को, शिकार और ललित कलाओं का जितना ज्ञान है, उसे देखकर हमें स्वयं वर्मा जी की याद आ जाती है।

जहाँ तक कथोपकथनों का सम्बन्ध है, प्रेमचन्द जी वर्मा जी से कुछ श्रेष्ठ ठहरते है। मनोभावों के अनुकूल कथपकथनों की रचना में प्रेमचन्द जी पटु हैं। साथ ही उनकी भाषा-शैली ने कथोपकथनों की रचना में जान डाल दी है। प्रेमचंद जी पर मुसलमानी सभ्यता का प्रभाव है। वे स्वयं अरबी, फारसी के

विद्वान थे और उर्दू के लेखक तो थे ही। इसलिए उर्दू की रवानगी, मुहाविरेदानी, लोच और व्यंजना उनकी भाषा में मिलती है। वर्मा जी की शैली में शिथिलता है। स्थानीय शब्दों और मुहाविरों के प्रयोग से उनकी भाषा में ग्रामीणता का दोष आ गया है। उनकी वाक्य-योजना कहीं-कहीं पर शिथिल और निष्प्राण-सी हो गयी है।

वर्मा जी और प्रेमचंद दोनों ने कथा-साहित्य अधिक लिखा है। दोनों ही ने उपन्यास, कहानियाँ और नाटक लिखे हैं। प्रेमचंद ने उपन्यास और कहानियाँ अधिक लिखी हैं। उन्होंने कहानीकला में विशेष सफलता प्राप्त की है। वर्मा जी ने कहानियाँ उच्चकोटि की नहीं लिखी। प्रेमचन्द जी ने नाटक भी लिखे हैं, परन्तु उनके नाटक उच्चकोटि के नहीं हैं। इसके विपरीत वर्मा जी ने कई नाटक लिखे हैं और उन्होंने प्रेमचन्द की अपेक्षा, इस क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त की है।

हिंदी साहित्य में प्रेमचन्द जी को वही स्थान प्राप्त है, जो यूरोपीय साहित्य में चार्ल्स डिकेंस और मौसिम गोर्की को प्राप्त है। वर्मा जी तो हिंदी के वाल्टर स्काट कहलाते हैं। श्री राजेंद्रसिंह गौड़ का कथन है कि "वर्मा जी और प्रेमचन्द ने अपने-अपने दृष्टिकोण से हिंदी-कथा-साहित्य की सेवा की है और इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। दोनों हमारे कथा-साहित्य के उज्जवल नक्षत्र हैं और दोनों ने मिलकर हिंदी के एक बड़े अभाव पूर्ति की है। हिंदी में वे अपने-अपने क्षेत्र के सम्राट हैं और उनसे हमारे साहित्य का गौरव बढ़ा है।"